पर काम में आधे मुसल्मान न जानिये कितने कुल कलंकों ने इसे सर्वथा अपने बीचसे निकाल उर्दू भूतिन को पट्टरानी कर बैठे और इस गुन आगरी के गुनो को बिल्कुल भुला दिया। ऐसे समय काशी के बहु मूल्य रत्नस्वरूप सुगृहीत नामधेय बाबू हरिश्चन्द्र इसके गुणों की ओर तन मन धन से इसके प्रचार में प्रवृत्त हुये। अस्तु फिर भी कोई ऐसा माई का लाल न निकला जो राजद्वार में इसका प्रवेश कराता। धन्यवाद उस सपूत मालवीय कुल भूषण मदन मोहन को जिन्हों ने अपने नामको सार्थक कर राजद्वार में इसका प्रवेश करा दिया। पर यह प्रवेश केवल नाममात्र को रहा इसकी बुराई चाहने वाले इसे आगे बढ़ाने में हर तरह की अड़चन छोड़ रहे हैं। मुसल्मानो का अड़चन डालना इतना बुरा नहीं लगता जितना उन अर्द्ध यवनों का जो अपने थोड़े से लाभ के लिये इसके प्रचार मे बाधक हैं। जान पड़ता है कोई दिन आवेगा कि यह सब गुन आगरी उन अड़चनों के रहते भी अपने बहुत अच्छे २ गुणों से राजद्वार में भरपूर पांव पसार लेगी। जो बाधक हैं उन्हीं के सन्तान इसका सन्मान करते हुये इसे जीवन दान के समान होंगे। हम ऊपर कह आये हैं गुन छिपाये नहीं छिपता अपने गुनों से यह दिन दिन विस्तार पा रही है। प्रति वर्ष इसमें नये २ मासिक और साप्ताहिक हर एक विषय के निकल रहे हैं और इस पादप को अनेक शाखा प्रशाखा में पल्लवित करते जाते हैं; नगर २ नागरी हितैषी सभा और शाखा सभा संस्थापित करने के उद्योग में लगे हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा जिसका पूर्ण आदर्श है। हम सहर्ष प्रकाश करते हैं कि यहां भी कालेज और स्कूल के छात्रों ने काशी नागरी प्रचारिणी के अनुकरण पर नागरी प्रचारिणी के नाम से एक सभा संस्थापित किया है प्रति रविवार को इसका अधिवेशन क्रमसे होता है। सत्तर के लगभग सभासद इसके अब तक हो चुके हैं। इसके अधिवेशन में उत्तमोत्तम निबन्ध पढ़े जाते हैं, नागरी का प्रचार किस तरह हो इसपर विचार किया जाता है। जैसा ढंग इस सभा का है उससे मालूम होता है इसके सभासद केवल आरंभ शूर नहीं हैं बरन Beal workers काम करके दिखादेने वाले हैं। हम

इसकी उन्नति के बड़े अभिलाषुक हैं। इतने नवयुवकों को ऐसे उत्तम काम में लगे देख चित्त हर्षनिर्भर हो उठता है जगदीश इनको इनके काम में सफलता दे। जो निबन्ध इसमें पड़े जाचुके हैं उन्हें क्रमसे हम प्रकाश करेंगे उनमें से एक यह है।

स्पर्द्धा।

आज का यह विषय हाथ में लेते ही थोड़ीदेर के लिये उस जगदाधार की अनुपम शक्ति का परिचय प्रत्यक्ष होता है। जिस तरह उसके अनेक लोकोत्तर गुणोंको स्मरण कर आनन्द की घटा उमड़ आती है वैसाही उसकी भूल के स्मरण का बवंडर एकत्रित घटा के छटा को कभी २ हटा कर चित्त चकोर को चिन्ता सागर में डुबो देता है। यह भूल नहीं तो क्या है कि गुलाब को ऐसा सर्वाङ्ग सुन्दर बनाय उसमें कांटा पैदा कर दिया। मेरी समझ में दुर्जन मित्र के साथ का यह परिणाम है कि गुलाब में कांटे की उपमा उपयुक्त समझी जाती है। हमारे उन्नतेच्छुक युवकों को अपने हर एक कामों में जैसा स्पर्धा आवश्यकीय है वैसाही स्पर्धा को आदर्श कर उसकी जांच और पंरताल भी। स्पर्धा के श्लाघनीय गुणों में कोई बुराई पैदा हो जाती है तो वहीं जहां आदर्श स्वयं कलंकी है। सब भांत भलाई में एक न एक बुराई भी रहती है गुलाब में कांटा इसका निदर्शन है। ईर्ष्या और स्पर्धा में परस्पर का क्या लगाव है इसको बताने का कोई प्रयोजन ही नहीं है। ईर्षा स्पर्धा की साथ देने वाली भी होकर उपेक्षणीय और त्याज्य है इसी के प्रतिकूल स्पर्धा ग्राह्य और आदरणीय है। स्पर्द्धा से जो दुर्लभ है वह सुलभ हो जाता है और ईर्षा से सुलभ भी दुर्लभ। वह नीचे से ऊपर को उठाती है यह ऊपर से नीचे को ढकेलती है। उससे सत्कार मिलता है इससे जो सत्कार मिल चुका है उसमें घाटा देखा जाता है। कहां तक कहें ईर्षा स्पर्धा की सहचारिणी भी होकर सर्वथा त्याज्य है। जो हो आज हम को स्पर्धा के गुणों से प्रयोजन है। प्रिय सज्जनों स्पर्धा वह वस्तु है जिसने विश्वामित्र को क्षत्रिय से ब्रह्मर्षि बना दिया वशिष्ट के अदम्य और उदण्ड तेज को देख विश्वा-

मित्र ने उनका अनुकरण करना चाहा तपस्या का अनेक कष्ट सहने के उपरान्त अन्त को सफल मनोरथ हो ही गये। स्पर्धा से कितने परतन्त्र देश स्वतंत्र हो गये और कितनो के स्वतंत्र हो जाने का बीज बोया जा रहा है। इटली, और जापान इसका उदाहरण है। चीनियों का अफ़ीम छोड़ देना इसका साक्षात् प्रमाण है। बहुतेरे काम देखा देखी लोग स्पर्धा में आप करने लगते हैं। धनुर्धारी अर्जुन को बाण चलाते देख कितने उस समय के क्षत्री बाण विद्या विशारद हो गये थे। आज कल व्याख्यान दाताओं की वाचाल शक्ति देख हम में से कितने वक्तृता देने लगे हैं। स्वामी भास्करानन्द का योग बल देख कितनो को योगी होने का शौक़ करोया था। स्वामी रामतीर्थ तथा एनीबिसेंट कोहिन्दू धर्म में दृढ़ देख कितने ग्रेजुयेटों के ख़याल बदल गये। सेंडो का डंडा फेंकना और कसरत करना देख हम भी सेंडो बन सीखने लगे। बाबू हरिश्चन्द्र को हिन्दी में लेख और कविता करते देख कितने हिन्दी के सुलेखक हो गये। कहां तक गिनावें जगत् की रीति ही कुछ ऐसी देखी जाती है पहलवान को देख अखाड़े की खोज लोगों को होती है। अच्छे विद्वान् पण्डित या आलिम को देख उन पुस्तकों का अनुसन्धान होने लगता है जिन्हें पढ़ उसने इतनी पण्डिताई या इल्म हासिल किया। कहां तक गिनावें उपन्यास लेखक, नाटक रचयिता, इतिहास वेत्ता, वैज्ञानिक, चित्रकार, शास्त्रकार, दार्शनिक समाज संशोधक, मातृभाषा प्रचारक, साहित्याचार्य, गायनाचार्य, वैद्य, इत्यादि इसी स्पर्धा की सेवा उपासना से उत्पन्न होते हैं। एक को देख दूसरा उसी काम में हाथ डालता है खरबूज़े को देख खरबूज़ा रङ्ग पकड़ता है। सुना जाता है शेक्सपियर पहिले किसी नाट्यशाला में ऐकृर थे पीछे वेही ऐसे नाटक रचयिता हुये कि जिनके नाटकों में जो भाव दरसाये गये हैं उनकी न जानिये कितनी टीका टिप्पणी हो चुकी है। ऐसाही मुल्की तरक़्क़ी और मुल्की जोश में जापान को आदर्श बनाय भारत इस समय चिर निद्रा से जाग उठा है। सारांश यह कि संसार में जितने नवीन संविधान, भले परिवर्तत, सद्गुणों का आवि

भाव, प्राचीन जीर्णोद्धार, सभ्य संस्कार, उन्नति, अभ्युदय, परिवर्द्धन इत्यादि सब इस स्पर्द्धा पर निर्भर हैं। स्पर्द्धा से श्रद्धा का प्रादुर्भाव होता है उपरान्त आत्म निर्भरता के साधारण सूत्र का उपयोग करना पड़ता है। फिर क्या रहा जहां आत्मनिर्भर ऐसा अमूल्य रत्न हाथ आया तब दुर्लभ ही क्या है संसार के सबी पदार्थ हाथ की पुतली बने नाचने लगते हैं।

अभी तक गुलाब के गंध का गुण आप को दिखाया गया अब कांटे की ओर तनिक दृष्टि दीजिये। स्पर्धा के साथ विचार और विवेक न रखने से हमारी भली बात भी उलटा असर पैदा करने लगती है। स्पर्धा के दुरुपयोग और दुराग्रह से हमारे नवयुवकों को जेन्टिलमेन बनने का हौसिला चित्त में आ समाया है। जिससे वे अपनी सबी पुरानी रीति नीति को जलांजली दे बैठे हैं और नई सभ्यता के संचार के लिये उधुम मचाये हुये हैं। द्विजाति हों तो जब तक शिखा सूत्र का विसर्जन न कर लें तब तक सभ्यों की श्रेणी में आही नहीं सकते। साफ़ा और पगड़ी की जगह जब तक है ट और डासन का बूट न हो तब तक उनकी शिक्षा और सभ्यता दोनों अधूरी है। सौ मन साबुन पोत डाला पर रंग गोरा न कर सके. सफ़ाई और ऊपरी बनावट की सब फिकिर कर चुके पर कामयाब न हुये। अपने चेहरे की बनावट पर इतना नाज़ां हैं कि घंटों बाल झारने में बीत जाता है और दर्पण हाथ से अलग नहीं होता। यदि कहो विद्योपार्जन में पूर्ण हुये सो भी नहीं सभा और कमेटियों में सिवाय तालियां पीटने के और कुछ न सीखा। जिन्होंने सीखा वे उनके से जेनटिलमेन न बन सके। वस्तुतः ऐसों ने हमारी आशा लता पर पाला डाल दिया हमारे आनन्द को किरकिरा बना दिया। ऐसों के चरित्र के संबन्ध में किसी कवि ने कहा है—

ईश गिरिजा को छोड़ ईशू गिरजा में जाय,
सुन्दर स्वदेशी लोग मिस्टर कहावेंगे।
कोट पतलून बूट टोपी कंफार्ट हैट,
जाकेट के पाकेट में वाच लटकावेंगे॥ इत्यादि

सारांश यह कि स्पर्द्धा का सदुपयोग बड़े से बड़े अभीष्ट साधन का द्वार है और दुरुपयोग से पतित से पतित दशा में गिर जाना संभव है। किन्तु इस दुरुपयोग महारोग की संजीवनी औषधी और वैद्य अपना विचार और विवेक है उसी से उचित अनुचित का निश्चय कर तदनन्तर उसे साधन में परिणत करने से भले ही सब भांत भला है।

प्राप्त ग्रन्थ।

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति–पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी कृत। इसमें हिन्दी का पूरा इतिहास है। समय २ हिन्दी में क्या २ परिवर्तन हुये और अबयह इस वर्तमान दशा को कैसे पहुंची यह सब भी हिन्दी की उत्पत्ति के साथ इसमें दिया गया है। मूल्य ।) पता इण्डियन प्रेस–प्रयाग।

बालनीति माला–पं० रामजी लाल शर्मा रचित। चाणक्य, विदुर, शुक्र, कणिक, इन सबों के नीति का सारांश हिन्दी में दिया गया है बालकों को बहुत उपयोगी है। मूल्य ॥) पता इण्डियन प्रेस–प्रयाग

लड़कों का खेल–छोटे बालकों को परमोपयोगी। वर्णमाला के अक्षरों के अभ्यास की सचित्र पुस्तक बालकों को परमोपकारी ऐसी पुस्तक अब तक नहीं छपी। एक २ अक्षर में एक २ चित्र और उसी अक्षर का एक २ छोटासा जुमला (वाक्य) इसमें है। छोटे बालकों का मन ऐसी पुस्तकों के पढ़ने में अवश्य रमेगा। मूल्य =)॥ पता इण्डियन प्रेस–प्रयाग।

विशिष्टाद्वैत दर्पण।

रामानुज संप्रदाय का तत्व इसमें बहुत अच्छी तरह पर दिया गया है। ग्रन्थकार ने इस पुस्तक के रचने में बड़ा परिश्रम किया है और श्रुति स्मृति द्वारा विशिष्टाद्वैत के सिद्धान्तों को पुष्ट किया है। श्री वैष्णावों के लिये तो परमोपकारी है किन्तु साधारणतः सबों के लिये मनोरंजक है। यह बड़ा लाभ इस पुस्तक के पढ़ने से है कि विशिष्टाद्वैत क्या है सो अच्छी तरह मालूम हो जाता है। श्रीमान् स्वामी रामप्रपन्न रीवां निवासी द्वारा राघवेन्द्र प्रेस प्रयाग में मुद्रित हुआ। मूल्य ॥।)

फ़ेंण्डस डायरी १९०८ की। लहरी प्रेस बनारस की छपी। हम इस डायरी को सहर्ष स्वीकार करते हैं।

REGD. No. A. 308.

हिन्दी प्रदीप

मासिक पत्र।

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट ह्वै आनन्द भरै।
बचि दुसह दुरजन वायु सों मणिदीप समथिर नहिंटरै॥
सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामे जरै।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै॥

जिल्द २९ | दिसम्बर १९०७ | संख्या १२

विषय सूची।

पण्डित बालकृष्ण भट्ट सम्पादक और प्रकाशक के

आज्ञानुसार पं० शीतलप्रसाद त्रिपाठी ने अभ्युदय प्रेस प्रयाग में छापा

सभायें पुस्तकालय और विद्यार्थियों तथा असमर्थों से अग्रिम १॥=)
समर्थोंसे ३।=) पिछले अङ्कों की पूरी जिल्द फी जिल्द मै पोस्टेज २)

-:॥ श्रीः ॥:-

हिन्दी प्रदीप

जिलद २९ सं० १२ | प्रयाग | दिसम्बर सन् १९०७ ई०

अन्तः सारवान् ।

कविकुल गुरू कालिदास ने मेघदूत में कहा है "रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय" । छूछा या खाली सब हलका होता है भरा हुआ भारी भरखं हो जाता है । कौन कितना छूछा है और कितना भारी भरखं है यह प्रत्येक मनुष्य के काम से प्रगट होता है जो क्षुद्र या छिछोरे हैं वे कितना ही अपने को पूर्ण प्रगट करैं पर किसी को उनका गौरव पसन्द नहीं आता न किसी को उन पर श्रद्धा भक्ति होती है । जो अन्तः सारवान् हैं वे अपनी सारवत्ता की पूंजी चाहे वे कितना ही छिपावें भी पर उनकी पूंजी गुप्त रहती ही नहीं । संसार के जितने विषय हैं सबों में प्रायः इन दोनों की परख होती है । सब छोड़ पहले हम रोज़गार या धन संबन्ध में इसकी परख करते हैं । जो थोड़ी पूंजी वाले हैं वे रोज़गारियों में अपनी बात बनाने को अनेक रंग रंगते हैं और सदा इसी चेष्टा में रहते हैं कि हमारी शाख बाज़ार में दूनी चौगुनी रहे बड़े २ सेठ साहूकारों में हम भी गिने जांय । सदा इसी फ़िकिर में रहते हैं कि वही व्योपार करैं जिसमें डेहुड़ा दोगुना हो । थोड़ा मुनाफ़ा उन्हें पसन्द नहीं आता जब तक एक के दो और दो के चार न हों ।

धन में जो भारी भरखं और बड़ी पूंजी के हैं वे रुपये में एक पाई मुनाफ़े को ग़नीमत मानते हैं लाखों का वारान्यारा बात की बात में कर देते हैं। उनको रुपये में एक पाई का मुनाफ़ा लाखों पाई के हिसाब से कई हज़ार रुपये हो जाते हैं। दिन में दस बीस लाख का हेर फिर हुआ तो कई हज़ार की बचत प्रत्येक दिन होती गई तब उनके असंख्य धन का क्या ठिकाना है। ऐसे व्यौपारी यूरोप और अमरीकामें हैं हिन्दुस्तान में काहे को कभी होंगे ऐसा ही अन्तः सारवान् पूर्ण विद्वान् जो सागर समान विद्या में अगाध अक्षोभ्य और गंभीर हैं उनकी तुलना वह नहीं कर सकता जिसमें पल्लव ग्राहि पाण्डित्य है। पर ये पण्डितंमन्य कभी किसी अंश में पट्शास्त्री से कम अपने को नहीं मानते जितना ही वे अपने को बनाते हैं उतना ही उनका ओछापन प्रगट होता जाता है। ऐसा ही आभिजात्य और कुलीनता में भी है जो ऊंचे कुल के हैं जिनकी नसल में कोई फर्क नहीं है शुद्ध रजवीर्य की सारवत्ता जिनमें है वे जहां रहेंगे छिपेंगे नहीं। ऐसे लोग जिस किसी ऊंचे अधिकार पर रहेंगे बहुधा अपने काम से उस पद की शोभा होंगे। हमारे हाकिमों में प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जो किसी ऊंचे कुल के हैं उनके शासन से सब खुश रहें हैं। जब से कंपिटीशन का क्रम निकला तब से ऊंच नीच सब दरजे के लोग सिविलियन बन यहां आने लगे हैं। उनमें जो नीच कुल के हैं वे अपने कामों में जल्द से पदच्युत हो अपने कुल की नीचता तुर्त प्रगट कर देते हैं। "उन्नतं पदमवाप्य यो लघुर्हेलयैव सपतेदिति ब्रुवन्। शैलशेखरगतः पृषत्क णाश्चारुमारुतधुतः पतत्यधः" पहाड़ की चोटी पर दश पांच कतरा पानी का हलकी हवा के झकोर से भी जो नीचे आ गिरता है सो मानो इस बात को कह रहा है कि हलका मनुष्य जो अन्तः सारवान् नहीं है वह भी हमारे समान ऐसाही आ गिरेगा। शारीरिक बल पहलवानी में भी जो अन्तः सारवान् है चाहे बहुत मोटा ताज़ा न हो अपने दुगुने को कुश्ती में उठाय पटक देता है। जो दुर्बल और अन्तःसार विहीन है वह कितना ही दांव पेच जानता हो कभी न जीतेगा। इत्यादि प्रत्येक विषय में इसके भांति २ के उदाहरण मिलेंगे पढ़ने वालों को दिग्दर्शन मात्र यहां कराया गया है।

शान्ति से अशान्ति।

बृटिश जाति के शासनकर्ता भारत में शान्ति स्थापन का अभिमान रखते हैं। अभी हाल में मारली साहब ने अपनी एक स्पीच में कहा भी है कि यदि हम हिन्दुस्तान का शासन छोड़ कर चले आवें तो वहां के लोग आपस में कट मरें। तात्पर्य यह है कि यहां के लोग इस योग्य नहीं हैं कि अपने मुल्क का इन्तिज़ाम अपने आप कर लें। पायोनियर ने भी ऐसा ही एक बार लिखा है कि "वे नहीं जानते उनके लिये क्या अच्छा है और किसमें उनकी भलाई है।" सच है इस ग़ायब गोई का ज्ञान तो केवल पायोनियर को है हम क्या जानें कि हमारे लिये क्या भलाई है। कदाचित् पायोनियर का यह आशय है कि दासत्व की श्रृंखला से अपने को छुटाने का यत्न हम न करें चपत पर चपत खाते रहैं फिर भी बराबर गिड़ गिड़ातें ही जांय इसी में हमारा भला है। पण्डित मारली को अपनी विद्या का बड़ा अभिमान है विद्या और समझदारी की पूंजी मारली ही साहब के पास रह गई है। बुद्धिमानों ने काल को चक्र के रूप में नाहक बांधा है यह काल लंगड़ा सा हो सदा स्थिर रहता है उसमें परिवर्तन कभी होता ही नहीं। देश की जो दशा तब थी जब अंगरेज़ यहां पधारे थे वही मूढ़ता अब तक लोगों में बनी है उसमें ज़रा भी हेर फेर नहीं हुआ। इतने दिनों तक जो हमें शिक्षा दी गई वह सब व्यर्थ गई उसका कोई परिणाम न हुआ। धन्य मिस्टर मारली की मोटी अकिल स्वार्थ ऐसा ही होता है। लोभ बुरी बला है इनसाफ़ और न्याय का अंकुर भी मन में नहीं रह जाता। भारत में अब एक २ नगर में प्रत्येक विषय में पटु बुद्धि सर्वकला चातुरी धुरीण राज्यशासन कौशल कुशल मुल्की इन्तिज़ाम की मानों मूर्ति ऐसे २ लोग हैं कि भारत क्या समग्र योरप का शासन करने को तैयार हैं। खेद है कि उनको अपनी बुद्धि और कला कौशल को मांजने का अवसर नहीं दिया जाता। अस्तु अब प्रस्तुत का विचार करो तो यह शान्ति हमको उतना लाभ दायक नहीं हुई जितना शान्ति स्थापन करने वालों को। ज्यों २ शान्ति और आशायिस तथा आराम बढ़ता गया त्यों २ हम क्षीण होते गये।

श्रीरामचन्द्र के समय का हाल गुसांई तुलसीदास जी ने लिखा है "जेपुर-गांव बसहिं मग मांहीं। तिन्हहिं नाग सुर नगर सियाहीं।" अर्थात् श्रीरामचन्द्र को बन में जाते समय जो नगर और गांव मिले वे इतने रंजे पुंजे थे कि उन्हें देख नाग और देवताओं के नगर सिहाते थे कि हम भी ऐसे क्यों न हुये। वही अब इस समय विशेष कर ऐसे दुर्भिक्ष में कि थोड़े से प्रधान २ नगरों को छोड़ देश का देश श्रीहत सा हो रहा है। हमारे लिये वह अशान्ति ही अच्छी थी कि सब लोग रंजे पुंजे खुशहाल चैन उड़ाते थे देश का धन एक पैसा बाहर नजा हर साल की उपज यहीं रहती थी लोगों का भरपूर भरण पोषण होता था। छोटे मनुष्य को भी अन्न वस्त्र का टूटा न था। अब के समान तब देश में एक चौथाई लोग एक जून आधे पेट खाकर नहीं रह जाते थे। इस समय जिस नगर या गांव में जाइए वहीं क्षुधा पीड़ित मनुष्य अस्थि-शेष पिशाच की सी सूरत बनाये पेट खलाये नज़र पड़ेंगे। देशका देश श्रीहत श्मसान भूमि सा हो रहा है। क्या इसी का नाम शान्ति है? यह शान्ति तो महा अशान्ति का क़िबले गाह है। हम ऐसी शान्ति कभी नहीं चाहते। हमें इस शान्ति से क्या लाभ पहुंचा विलायत अलबत्ता हमारी बदौलत रुपयों से खचा खच भर गई और वहां के लोग इस समय माला माल हो रहे हैं। इस शान्ति के साथ ही साथ एक तरह का प्रलोभन और माया जाल ऐसा फैला था कि जिससे शान्ति भंग होने से अब तक बची रही। पर वह प्रलोभन निरा झूठा निकल गया तब वह माया जाल का परदा भला कै दिन रह सक्ता था। गुरू लोगों की पालिसी की पोल खुल गई रेल तार इत्यादि अनेक आराम पहुंचाने वाली बातें की गईं पर हमें क्या उसका लाभ भी वही उठा रहे हैं जिन्हों-ने शान्ति स्थापन के लिए इसे निकाला है। रेल द्वारा जितना रुपया विला-यत जा रहा है उतना किसी दूसरे ज़रिये नहीं। यही सब समझ २ हम परकटे पखेरू से फड़ फड़ा रहे हैं कुछ वश नहीं है। इतने पर भी सन्तोष नहीं है "तृप्तिर्नास्ति महोदधेश्चबहुभिर्ग्रासैः पलासैरपि" हम जो अपने लिये स्वदेशी और बायकाट निकाल रहे हैं वह अखर गया वही

भीतर अशान्ति पदा कर रहा है। तो सिद्ध हुआ यह शान्ति अब अशान्ति का रूप हो रही है पर इसे हमने बहुत दिन बाद सर्वस्व गवांय तब पहचाना और यह अशान्ति दिन २ बाढ़ पर है घटने की आशा नहीं है।

व्यापार शिक्षा।

ऐसे समय जब इस भारत भूमि में देशी व्यापार के पौधे जमते ही न थे पूरब की ओर से उठी बायकाट की घनघोर घटा ने स्वदेशी आन्दोलन की सुखदायी वर्षा का आरम्भ कर दिया। इस वृष्टि ने १८८३ में लगाये हुए पौधे को मानों फिर से सजीवित कर दिया। सूखते धान में मानों पानी पड़ा पुराने पौधे हरे भरे होने लगे और नये उगने लगे। जिन मिलों के हिस्सों का भाव गिर कर ५०) होगया था। उनका १५०) और २००) हो गया। नये २ कारखाने दूकाने और मिलें स्थापित होने लगीं। जहां पहिले केवल निराशा थी वहां आशा के अंकुर जमने लगे। युवक जन आपस में कहने लगे कि इस असार संसार में सिर्फ सरकारी नौकरी ही सार नहीं है बरन और २ ज़रिये भी ऐसे हैं जिनसे हम अपनी हैसीयत के माफ़िक कालक्षेप कर सकते हैं। इसका एक मात्र उद्देश्य केवल अपना भरण पोषण ही नहीं है अपिच देश का बड़ा भारी उपकार भी है। उनके हौसिले जिन्होंने कभी बंगाल की खाड़ी भी नहीं नांघा था अमेरिका और जापान की खबर लेने लगे। अशिक्षित जिन्हें अक्षर से भेंट न थी वे देशी व्यपार की ओर झुक पड़े और सोंचने लगे कि विदेशी वस्तुओं में तो अब सिवाय घाटा के फ़ायदा नहीं है तो अब देशी चीज़ों की ओर हमें ध्यान देना चाहिये। इसमें नफ़ा है और गाहक भी खुश रहते हैं। देशी माल रखने से बिना प्रयोजन के लोग हमारी दूकान की तरक़्क़ी के लिये प्रयत्न करते हैं। तब इस बहती गंगा में हाथ क्यों न धोलिया जाय। कारीगरों के प्राण तो मानों यम द्वार से फिर लौट आये। तात्पर्य यह कि इस स्वदेशी आन्दोलन से जहां देखो वहां सब भला ही भला है। अगर कुछ हानि हुई तो विदेशी व्यापार और विदेशी कर्मचारियों की। यह तो साधारण जन समूह

का हाल हुआ अब टुक उन वीरों का हाल कह सुनाते हैं जो देशानुराग की मूर्ति है, देश के लिये प्राण तक न्यौछावर कर देने को उद्यत हैं और बन्दे मातरम् की चिल्लाहट मचाते अपना बेड़ा पार खींच ले जाया चाहते हैं। व्यापार, समाज का सुधार, और शिक्षा इन तीनों को उन्होंने बहुत आवश्यक मान रक्खा है। देश की वर्तमान दशा में यह नहीं कहा जासक्ता कि इन तीनों में कौन कम हैं कौन ज़ियादा इस लिये कि देश में इन तीनों की एक सी ज़रूरत है। कितनों का यह मत है कि सब का मूल शिक्षा है सब लोग शिक्षित हो जांय तो समाज सुधर जाय और व्यापार भी बढ़े। कुछ लोगों के चित्त में समाया हुआ है कि राष्ट्रीय शिक्षा बिना समाज सुधार के हो ही नहीं सकती शिक्षा ही के ये सब गुण हैं कि हमें चेत आई और सोचने लगे कि हम क्या थे क्या होगये। परन्तु जब तक समाज ठीक न हो जाय शिक्षा का प्रबन्ध करैगा कौन? इससे समाज का सुधार उनके मत में पहली बात है।

कितनों का मत है कि "बिना ज़र इश्क टें टें" धन हीन के कोई काम सिज़िल नहीं उतरते वह धन व्यापार से मिलता है तब व्यापार ही सब में प्रधान है। मेरी समझ में ये तीनों भूलते हैं इनका खयाल है कि एक काम करने से तीनो हो जांयगे किन्तु यह नियम वहाँ के लिये है जहां एक ही मनुष्य के कामों की आलोचना करना हो वहां ही यह बहुत सुघटित है। "एकहि साधे सब सधै सब साधे सब जाय" परन्तु जहां देश या राष्ट्र के कामों का विचार है वहां यह नियम सर्वथा दूषित है। इस लिये कि एक मनुष्य का चित्त एक ही हो कर अनेक कार्यों की ओर रुचि प्रगट करता है तब जो वह मनुष्य हवस में पड़ सब को साधना चाहता है तो उसका चित्त बंट जाता है जिससे सब काम नष्ट हो जाते हैं इससे उसे एक समय मे एकही काम करना उचित है। किन्तु जब राष्ट्र और देश में अनेक मनुष्य होते हैं और सबकी रुचि और निपुणता एक ही काम की ओर होना संभव नहीं है तब यदि एक ही काम किया जाय तो बहुत से मनुष्य जिनकी स्वाभा-

विक रुचि उस काम की ओर नहीं है वे बेकार रहैंगे या उस काम को करैंगे भी तो आधे मन या बुझी तबियत से करैंगे । पर भिन्न भिन्न काम होने से सब लोग अपनी२ रुचि और निपुणता के अनुसार काम बांट के करैंगे तो देश सब ओर से इकट्ठा तरक्की करता हुआ आगे को बढ़ता जायगा । इस लिये हमारी समझ में यदि व्यापार, शिक्षा और समाज के सुधार का एक साथ प्रयत्न किया जाय तो उत्तम होगा । इन तीनों विषयों की अलग २ समालोचना पढ़ने वालों को अवश्य रोचक होगी ।

सब से पहले इस पर ध्यान देना चाहिये कि जो हम हिन्दुस्तान को भारी व्यपारी देश बनाना चाहते हैं तो व्यापार के पुराने तरीकों को छोड़ नये तरीकों को काम में लावें इस लिये कि अब उन पुराने तरीकों से प्रयोजन की सिद्धि असंभव है । सोचना चाहिये कि हम अमेरिका इंगलैंड, जरमनी, फ्रांस आदि देशों से किस बात में कम हैं जिससे हम उनके मुक़ाबिले कंपिटीशन में हट जाते हैं । हमारे यहां मज़दूर ≡) हद्द से हद्द ।–) या ।=) पाते हैं और वहां मज़दूर १) कभी को १।) रोज़ पाते हैं, तब भी उनकी चीज़ें हमारे यहां से सस्ती पड़ती हैं । कच्चा बाना रुई और सन इत्यादि यहां ही से वे खरीद ले जाते हैं और जहाज़ आदि का भाड़ा देते हैं तब भी उनका माल हम से सस्ता पड़ता है सो क्यों । इसका कारण केवल निर्माण कौशल है । उन चीज़ों के तैयार करने में हम अभी उतने कुशल नहीं हुये हैं जितना कि वे हैं । यह उनकी निर्माण चातुरी ही का कारण है कि उन२ देशों के व्यौपारी से कच्चा बाना महंगा ख़रीद ज़ियादा मज़दूरी देकर भी बाज़ार में चीज़ें हम लोगों से सस्ती बेंचते हैं । निर्माण चातुरी जैसा रेशम या ऊन में सन या पेटुआ का पुट दे देते हैं कि रेशम और ऊन में दिया हुआ वह पुट बिलकुल भासित नहीं होता न उसकी चमक दमक में कहीं से कुछ हेठापन ज़ाहिर होता है और उसे खालिस ऊन या रेशम की बनी चीज़ों के भाव बेंचते हैं । यही कारण है कि यहां के बने कपड़े शुद्ध ऊन या रेशम के बने होने के कारण अधिक टिकाऊ और खुरखुरे होते हैं । हां वैसी चमक दमक नहीं आती

जिसने भारत सन्तानों को मोहित कर रक्खा है। तो विदेशों में जाय व्यापार में सहायक मिलों की कारी गरी सीखना बहुत आवश्यक जान पड़ता है। अभी इस व्यापार शिक्षा के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहना है जिसे फिर कहैंगे। हरी कृष्ण अग्रवाल

हिन्दू दिमागी कूवत में सब से बढ़े हैं।

प्रारंभ से पाया जाता है कि जिस ओर इन्होंने अपना दिमाग़ लड़ाया उसी में अद्वीतीय होगये। पहिले जनक के समय ब्रह्मविद्या की ओर जनक ऐसे राजाओं की झुकावट देख हमारी ऋषिमण्डली उसी की खोज में झुक पड़ी। उस समय कैसे २ उपनिषद् और दूसरे २ ग्रन्थ तैयार किये गये जिन्हें पढ़ जरमनी इङ्गलैंड अमेरिका के विशिष्ट विद्वान् निहाल हो जाते हैं और मान बैठे हैं कि बाइबिल और क़ोरान आदि धर्म ग्रन्थ में आध्यात्मिक सब उन्हीं की छाया है और उन आर्यों की बुद्धि का गौरव बड़े आदर पूर्वक स्वीकार करते हैं। उपरान्त अर्जुन के समय बाणविद्या का अधिक प्रचार होने से महाभारत के समय कैसे २ बाणविद्या में कुशल क्षत्रिय और द्रोण, कृप, अश्वत्थामा सरीखे ब्राह्मण भी हुये जिनकी वीरता की कहानी में व्यास देव ने महाभारत सरीखा इतना बड़ा ग्रन्थ रच डाला। "गुण न हिरानो गुण ग्राहक हिराने हैं" इस कहावत को चरितार्थ करते विक्रम और भोज के समय राजाओं को कवियों की क़दर करते देख कालिदास भवभूति भारवि, श्रीहर्ष, बाण, दण्डी, प्रभृति कैसे २ कवि और कुमारिल, शङ्कर, वाचस्पति आदि दर्शनिक हुये जिनके रचे ग्रन्थों में इन दिनों के पण्डितों का चंचुप्रवेश भी नहीं होता। उनकी पंक्तियों के लगाने में विद्वानों के भी दांतों पसीने आते हैं। इधर भोगलिप्सू मुसलमानों की सलतनत में नाचने गाने बजाने की बेइन्तिहा तरक्की होने पर बैजू और तानसेन सरीखे कैसे २ गवैये हुये कि रागों की आलापचारी में उस्ताद भी पहले जिनका नाम लेकर गाना बजाना शुरू करते हैं। ऐसाही फ़ारसी उर्दू के प्रचार होने पर कैसे २ शायर और लेखक फ़ारसी और उर्दू में हुये बलिक अब तक हैं जिनकी तहरीर पर मुसलमान जो अरबी फ़ारसी को अपनी भाषा मानते हैं वे अब उसे अपनी

कहते शरमाते हैं। ऐसाही थोड़ेही दिनों से अङ्गरेज़ी में कितनी तरक्क़ी यहां के लोगों ने किया है कि विलायत में जाय अङ्गरेज़ी में वक्तृता कर अमेरिका तथा इङ्गलैंड के लोगों में अचरज पैदा कर दिया। अब ये राजनैतिक विषय तथा शिल्पचातुरी और देशी कारीगरी को तरक्क़ी देने में प्रवृत्त हुये हैं जिससे ये विदेशियों के आंख का कांटा सा हो रहे हैं और अनेक विघ्न डाल रहे हैं कि ये आगे न बढ़ने पावें पर उस प्रवाह को कौन रोक सक्ता है जो इनके मस्तिष्क की अखण्ड धारा से निकलता है। इनके मस्तिष्क में यह प्रबल शक्ति न रही होती तो अचरज न था कि विदेशी लोग जिन्होंने अनेक छल छिद्र से इन्हें वशमें कर रक्खा है अफ्रिका के हवशी और अमेरिका के रेड इण्डियनों की भांत इन्हें भी नेस्तनाबूद कर दिये होते। फिर भी गुलामी की जंज़ीर से इन्हें जकड़े हुये हैं और नहीं चाहते कि उनके चंगुल के बाहर हो जांय पर यह उनकी शक्ति के बाहर है। इनकी दिमाग़ी क़ूवत जो इनमें क़ुदरती या स्वाभाविक है छीन न सके। "नत्वस्य दुग्धजलभेद विधौ प्रसिद्धां वैदग्ध्य कीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः"। इनकी गुलामी का अन्त भी तभी होगा जब इनके दिमाग़ की क़ुदरती ताक़त भरपूर प्रगट हो उठेगी और उसे ये बेरोक ठोक स्वच्छन्दता पूर्वक काम में लाने लगेंगे। वही समय हमारे स्वराज का होगा और वह समय एक दिन अवश्यमेव आवेगा। शासनकर्ताओं की शासनप्रणाली उसके आने में यद्यपि देर कर रही है पर होनहार को कौन रोक सका है जितना ही देर हो रही है उतना ही उसमें पोढ़ापन आता जाता है। हमें चाहिये हम धैर्य के साथ उस दिन की प्रतीक्षा करते रहें उकतांय नहीं। परमात्मा न्यायी है यदि हमारा पक्ष न्याय दूषित नहीं है तो अवश्य हम कृतकार्य होंगे।

हम क्या सदा गुलाम ही रहैं गे !

विचार कर देखो तो हमारी कोई भी ऐसी बात नहीं है जिसमें गुलामी आदत की झलक न आती हो। कुल समाज की समाज कुछ ऐसे ढंग पर ढुलक पड़ी है कि हमारी हर एक बात में गुलामी की गन्ध

आ रही है। हमारी रीति नीति आपस का बर्ताव धर्म कर्म कोई भी ऐसे नहीं हैं जो गुलामी से खाली हों। नवयुवक स्वराज के लिये बहुत कुछ धूम मचाये हुये हैं किन्तु जब तक दास्य भाव के प्रेम को हम पाले हुये हैं तब तक कभी संभव है कि कौमी आज़ादी का आखिरी अंजाम स्वराज से विभ्राजमान हो हम स्वतंत्र समाज का सुख भोगने वाले देशों की नामावली में अपनी गिनती कर सकें ? मसल है काजल सबी लगाते हैं पर उस चितवन की छबि ही निराली है जो मन को मोह लेती है। इसमें सन्देह नहीं शिक्षा विभाग में इतनी कड़ाई पर भी हमारे नवयुवक बड़ी तरक्क़ी कर रहे हैं इल्म के हर एक Department विभाग में वायु वेग की गति से उड़ते चले जा रहे हैं और कुल हिन्दुस्तान को एक नेशन बनाने का हांथ ठोक दावा बांधे हुये हैं। इतनी बड़ी इमारत खड़ी कर दिया चाहते हैं पर नेव की ओर उनका ख़याल नहीं दौड़ता कि कैसी कच्ची नेव पर इस विशाल मन्दिर का निर्माण हम कर रहे हैं। हम भीतर भीतर कितने पोले हैं गुलामी का ज़हर हमारी नस २ में कितना भरा हुआ है इस पर उनका ध्यान नहीं है। ये नव युवक अपनी विज्ञान चातुरी इतिहास और पोलिटिकल इकानोमी में प्रवीण हो भांति२ के नये २ राजनैतिक ख़याल निकाला करते हैं किन्तु वह बात उनमें आही नहीं सक्ती जो आज़ाद कौम के मन में सूझैगी। वह जोश वह उत्साह वह सरगरमी उन से कोसों दूर है जो स्वतंत्र जाति में है। जिसे राजसिंहासन पर विराजमान होने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ वह पच्चियों से मिढ़ी नक़ली चौकी पर बैठ कहां तक असलीयत को पहुंचेगा। इस सब बकबाद का सारांश यह है कि हमारे में राजनैतिक बल पुष्टता के साथ तब आवेगा जब हमारी समाज में संशोधन होगा। वह संशोधन तभी हो सकेगा जब एक भी पुरानी लकीर के फ़कीर परिवर्तन विमुख न रह जांयगे और शिक्षा का प्रवाह भारत में सब ओर फैल जायगा। जब से वैदिकधर्म का लोप हुआ और ब्राह्मणों ने अपने मन का मत चलाया तब से धर्म के उपदेश का चोखापन जाता रहा। जिसमें देखो उसी में ब्राह्मणों

ने निजस्वार्थ को जल में तूंबी समान हिन्दूधर्म में सब के ऊपर रक्खा। धर्म की आड़ में रख समाज को अनेक फिजूल की क़ैद में जकड़ दिया और ऐसे २ सामाजिक नियम प्रचलित किये कि स्वातंत्र्य कहीं नाम को भी न रहा। अस्तु भगवत् शंकराचार्य्य ने लोगों को समाज के बन्धन से मुक्त करने की बहुत कुछ फिकिर आत्मवाद के द्वारा किया और कुछ दूर तक कृतकार्य भी हुये। किन्तु थोड़े ही दिन के उपरान्त स्वामी रामानुज और बल्लभाचार्य आदि कई एक संप्रदाय प्रवर्तक ऐसे हुये कि दासोस्मि की शिक्षा का प्रचार कर देश से आज़ादगी को उन्होंने खो बहाया। जहां के धर्म में दास होना मुक्ति का साधन माना गया है वहां के लोग आज़ादगी का जायका कैसे चख सक्ते हैं। कान में मंत्र फूंक चेला बनाना धूर्त प्रतारकों का ऐसा भारी लटका है कि इस ने बड़ाही सर्वनाश कर डाला और स्वतंत्रता को पास न फटकने दिया। ब्रह्मचर्य की प्रथा उठाय दुधमुहों के गले में शुरू ही से चक्की बांध सब्ज़े की तरह उगते पैरों से रुले जाने की भांति देश के भलाई की आशालता को जब हम पहले ही से काट डालते हैं "लतायां पूर्वलूनायां कुसुमस्यागमः कुतः" तब क्या उम्मेद की जाय कि हमारे में मुल्की जोश पैदा होगा। जब तक दुधमुहों के विवाह की चाल क़ायम है तब तक स्वतंत्रता के लिए चेष्टा व्यर्थ है इसी लिए हमें यह सन्देह होता है कि हम क्या सदा गुलाम ही रहेंगे।

शब्द की आकर्षण शक्ति।

शब्द की आकर्षण शक्ति न्यूटन की आकर्षण शक्ति से लवमात्र भी कम नहीं कही जा सकती बल्कि शब्द की इस शक्ति को न्यूटन की आकर्षण शक्ति से विशेष कहना चाहिये। इसलिये कि जिस आकर्षण शक्ति को न्यूटन ने प्रगट किया है वह केवल प्रत्यक्ष में काम दे सक्ती है। सूर्य पृथ्वी को अपनी ओर खींचता है पृथ्वी चन्द्रमण्डल को। योंही जितने बड़े पदार्थ सब छोटे को आकर्षण कर रहे हैं। किन्तु जब वे दोनों पदार्थ एक दूसरे के मुकाबिले में हों। पर शब्द की आकर्षण शक्ति में कुछ आवश्यक नहीं कि शब्द की आकर्षण शक्ति तभी ठहर सक्ती हो

अब नेत्र भी वहां योग देता हो। इन शब्दों का जितना ही अधिक समूह बढ़ता जायगा उतनी आकर्षण शक्ति भी अधिक होती जायगी। प्रत्येक जाति के धर्म ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं। वेदादि धर्म ग्रन्थ जो इतने माननीय हैं सो इसी लिये कि उनमे धर्म का उपदेश ऐसे शब्द समूहों में है जो चित्त को अपनी ओर खींच लेते हैं और ऐसा चित्त में गड़ के बैठ जाते हैं कि हटाये नहीं हटते। जैसा न्यूटन वाले आकर्षण का हाल हुआ कि वह सबों के दिलों को आकर्षित न कर सका। वृक्ष से फल का टूट कर नीचे गिरना साधारण बात है किसी के मन में इसका कोई असर नहीं होता न्यूटन के चित्त में अकस्मात् आया कि यह फल ऊपर क्यों न जा नीचे को गिरा तो अवश्य इसमें कोई बात है। देर तक सोचने के उपरान्त उसने निश्चय किया कि इसका कारण यही है कि बड़ी चीज़ छोटी को खींचती है। पर शब्द की आकर्षण शक्ति में इतना असर है कि मनुष्य की कौन कहे वन में मृगों को भी मुग्ध कर देती है। कोयल अपनी बोल में पंचम स्वर अलापती हुई सबों को क्यों भावती है इसी लिये कि मीठी आवाज़ Melodious voice सबों को सुखद है। बीन इत्यादि बाजन भी लोगों को क्यों रुचते हैं इसी लिये कि वे कान को सुखद और मन को आकर्षण करने वाले हैं।

केवल शब्द की मधुर ध्वनि पर जब इतना प्रलोभन है तब यदि उन शब्दों में अर्थचातुरी भी भरी हो तो वह कितना मन को खींचने वाली न होगी। अलंकारों में अनुप्रास Alliteration कितना करण रसायन है पर उसमें अर्थचातुरी न रहने से वह अलंकारिकों में इतनी प्रतिष्ठा नहीं पाता। यदि पद लालित्य के साथ अर्थचातुरी भी हो तो उसके समान बहुत कम काव्य निकलेंगे। जैसा दामोदर गुप्त का यह श्लोक है "अपसारय घनसारं कुरू हारं दूर एव किं कमलैः। अलमलमालि मृडालै-रिति रुदति दिवानिशं वाला॥

कोई विरहिणी नायिका अपने प्रियतम के वियोग में कामाग्नि से व्याकुल अपनी सहेली से कह रही है। कामज्वर के दूर करने को जो तुमने यह (घन सार) चन्दन हमारे शरीर में पोत रक्खा है इसे (अप-

सारय) दूर करो इसलिये कि चन्दन से तो और भी कामाग्नि धधक उठेगी मोतियों का हार उतार लो कमलों से क्या होगा वह भी ठंढक न पहुंचा सकेंगे । (अलमलमालि मृडालैः) ठंढक के लिए जो मृडालों को मेरे ऊपर धरे हो उसे हटाओ । इस भांत वह वाला रातो दिन कहर२ तुम्हारे वियोग में रोया करती है । तुलसी और बिहारी के काव्यों में ऐसा बहुत ठौर आगया है जहां अनुप्रास की मिठास और अर्थ चातुरी दोनों आई हैं । कुछ उदाहरण उसके यहां पर हम देते हैं ।

"टटकी धोई धोवती चटकीली मुख जोति ।
फिरत रसोंई के घरन जगर मगर द्युति होति" ॥
"मानहु मुख दिखरावनी दुलहिन करि अनुराग ।
सास सदन मन ललन हूं सौतिन दियो सुहाग" ॥
"भूषण भार सम्हारि हैं किमि ये तन सुकुमार ।
सूधे पायन धरि परत महि सोभा के भार" ।
"लगालगी लोचन करैं नाहक मनबंध जाय" ।
"देह दुलहैया की बढ़ै ज्यों ज्यों योवन योति ।
त्यों त्यों लखि सौतें सबै बदन मलिन द्युति होति ।"

तुलसी का जैसा—"तुलसी सराहत सकल सादर सींव सहज सनेह की"। "धिग मोहि भयउं वेनु बन आगी । दुसह दाह दुख दूषन भागी" ॥ "सुनी बहोरि मातु मृदुवानी । सील सनेह सरल रससानी" ॥

अंगरेज़ी में भी कहीं २ पर ऐसा है । जैसा पोप की इस पंक्ति में है । The sound should seem an echo to the sense अर्थात् शब्द ऐसे होने चाहिए जिसमें अर्थों की गूंज सी निकले ।

कालिदास का जैसा—"कन्या ललाम कमनीय मजस्य लिप्सोः"—इत्यादि

भवभूति का जैसा—"कूजत्कुञ्जकुटीर कौशिक घटा ।" वैदर्भी रीति और प्रसाद गुण इस तरह के काव्यों का प्राण है । पोप का और भी How high his highness holds his haughty head पर इसमें अर्थ चातुरी का अभाव है । शेक्सपियर का सा जैसा His heavy-shotted hammer shroud इसमें अनुप्रास अर्थ चातुरी सहित है ।

हमारा तात्पर्य यह कि जहां अनुप्रास विना प्रयास आजाय अर्थ में भी उससे अधिक सौन्दर्य बढ़ जाय तो वह सर्वथा ग्राह्य है और अनुप्रास के पीछे अर्थ चातुरी की हत्या करना पड़ा तो वह अनुप्रास किस काम का, जैसा इस समय के बहुधा नवसिखिया लेखक करते हैं। कालिदास के इस श्लोक में। "इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिवहि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्" अनुप्रास बिना बनावट के आगया है तो उत्तम है। जैसा "भवभूतेः संबन्धात् भूधर भूरेव भारती भाति"। जयदेव जो कोकिल कण्ठ कहलाये सो इसी लिए कि उनके पदों में लालित्य अर्थ चातुरी से कहीं पर खाली नहीं है। जैसा–"ललित लवंगलता परिशीलन कोमल मलय समीरे" इत्यादि। प्रसाद गुण विशिष्ट जैसा– "परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवताप भीतोहम्" वैदर्भी रीति का जैसा "कुतोऽवीचिर्वीचिस्तव यदि गता लोचन पथं त्वमापीता पीताम्बर पुरनिवासं वितरसि। त्वदुत्संगे गंगे पतति यदि कायस्तनुभृतां तदा-मातः शातक्रतव पद्लाभोप्यतिलघु"।

हे गंगे तुह्मारी (वीचि) लहर यदि नेत्र पथ में आ जाय तो (अवीचि) नरक या पाप कहां। तुम जल रूप में जो पी ली जाओ तो (पीताम्बर पुर) वैकुण्ठ धाम का वास दे देती हो। तुह्मारी गोद में जो देहधारी मात्र का शरीर आ गिरे तो (शातक्रतव) इन्द्र की पुरी स्वर्ग के पद का लाभ भी बहुत थोड़ा है।

जगन्नाथ पण्डित राज का जैसा–"यवनी नवनीत कोमलांगी। शयनीये यदि नीयते कथंचित्। अवनीतलमेव साधुमन्ये नवनी माघवनी विनोदहेतुः—

यमक और अनुप्रास दोनों एक साथ जैसा "तर्क कर्कश विचार चातुरी का तुरीय वयसा विचार्यते। आतुरी भवति यत्र मानसं धातुरीप्सितमपाकरोति कः"। इत्यादि अनेक इसके उदाहरण संस्कृत और भाषा दोनों में पाये जाते हैं अधिक पल्लवित न कर केवल दिग्दर्शन मात्र किया गया है।

रत्न हानि।

विद्या के अगाध सागर सच्चरित्र की कसौटी दो बहु मूल्य रत्न पं० सरयूप्रसाद जी मिश्र और पं० लक्ष्मीनारायण जी व्यास इस मनहूस महीने में हमारे बीच से निकल गये, पं० सरयूप्रसाद जी वेदान्तदर्शन के अद्भुत पण्डित थे कुसुमांजलि खण्डनखाद्य आदि ग्रन्थों को समझने वाले और उन ग्रन्थों की पक्तियों को लगाने वाले बड़े योग्य विद्वान थे। न केवल वेदान्त ही किन्तु छहो दर्शनों में आपका बहुत अच्छा प्रवेश था यहां तक कि मिल डारविन और स्पेन्सरआदि अंगरेज़ फिलासोफरों के सिद्धान्तों को भी अच्छी तरह समझे थे। उक्त पण्डितजी केवल दर्शन मात्र के पण्डित न थे वरन संस्कृत का कोई विषय नहीं बचा था जिसका स्वाद ये नहीं चक्खे हुये हों। धर्मशास्त्र, काव्य कोष अलंकार सबों में अच्छी तरह विद्वान थे। न केवल संस्कृत किन्तु भाषा के भी अच्छे पण्डित थे। इनके बहुत से लेख प्रदीप की पुरानी फ़ाइलों में मिलैंगे। निस्पृह और निर्लोभ भी इतने थे कि ऐसे विद्वान् होकर क्लेश से अपना जीवन बिताया पर किसी के आश्रित न हुए और अपने ४ पुत्रों को बी० ए० तक की उत्तम शिक्षा दिलाया। खेद इस बात का है कि मिश्र जी की आयुष्य अधिक नहीं थी केवल ५४ वर्ष की उमर में आप को काशी में गङ्गा लाभ हुआ। परमात्मा इनकी आत्मा को उत्तम गति प्राप्त करे।

व्यास जी हमारे प्रयाग नगर की शोभा थे शास्त्रीय क्रम पर वैद्य विद्या को ऐसा जानने वाले हम समझते हैं देश में बहुत कम लोग होंगे। सिवाय वैद्यक के व्यास जी योग का प्रकरण भी बहुत अच्छा समझे हुये थे। ८१ वर्ष की उमर में अनेक पुत्र पौत्र प्रपौत्र सहित बड़ा कुनबा छोड़ भाग्यशालियों की सीमा अपने में दरसाते सुरधाम सिधार गये। खेद है हमारे पुराने क्रम के जो लोग सिधार जाते हैं उनके न रहने की त्रुटि को दूसरा उनका स्थानापन्न हो नहीं पूरा कर सक्ता।

दीनानाम् कल्पवृक्षः स्वगुण फलनतः सज्जनानां कुटुम्बी।
आदर्शः पंडितानाम् सुचरित निकशः शील वेला समुद्रः॥

सत्कर्ता नावमंता पुरुष गुण निधिर्दक्षिणोदार सत्वो।
श्लोकः श्लाघ्यः सजीवत्यधिक गुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये॥

इस श्लोक का भावार्थ पूर्ण रीति पर इन महात्मा के सम्बन्ध में सुघटित होता है। सच्चिदानन्द परमात्मा इनकी आत्मा का कल्याण करे।

दक्ष यज्ञ विध्वंस.।

इस वर्ष कांग्रेस में जो दुर्घटना हुई उसे सबी पत्र लिख चुके। वहां की एक २ छोटी २ बातों के लिखना केवल पिष्ट पेषण है। फूट जो हिन्दुस्तान के सब भांत मिट्टी में मिलाये है यहां भी अपना पांव पसार ने से न चूकी। नरम और गरम दो दलों में आपस की फूट यहां तक तरक्की के पहुंची कि इसने काङ्गरेस महायज्ञ के जिसमें दक्ष के स्थानापन्न सर फ़ीरोज़शाह मेहता महोदय को मानना पड़ेगा बाल गंगाधर के द्वारा विध्वंस कर डाला। दक्ष के यज्ञ में सती ने अपना तन त्यागा था यहां नरम और गरम दोनों की सहानुभूति सुरधाम सिधार गई। दक्ष यज्ञ में शिव के गण ने नोच खसोट और लूट मार की थी यहां तिलक के अनुयायी विरार और नागपूर वालों ने यष्टि प्रहार के द्वारा कांगरेस पंडाल छिन्न भिन्न कर डाला। दक्ष के यज्ञ में इतनी हलचल होने पर भी त्रिनेत्र शिव अपने आसन से चलायमान न हुये यहां गरम दल को अपने साथ लिये राजनैतिक विषयों के स्वराज्य स्वदेशी और बायकाट त्रिधा विभाग कर बाल गंगाधर अपने अटल सिद्धान्त से ज़रा न टसके। यों तो जो जिस दल का है वह उसी की गीत गाता है और उसी के अनुसार गोखले मेहता और तिलक का खण्डन मण्डन करते आक्षेप उपालंभन तथा स्तुति से नहीं चूकता। कोई तिलक के सर्वथा दोषी ठहराता है कोई कहता है इसमें कुसूर मेहता और गोखले का है। जो जिसकी राय हो हम को इसके निर्णय से कोई प्रयोजन नहीं। हम केवल इतना ही कहा चाहते हैं कि इस तरह के विरोध का परिणाम अच्छा नहीं और जो कुछ दुर्घटना वहां हुई वह शिष्ट क्रम के सब भांत प्रतिकूल है। "पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददतेनपद्धतिम्" जहां देश के ऐसे उच्चश्रेणी

के लोग हों वहां लाठी लठौअल और जूता पैजार हो तो अशिष्ट असभ्यों से इनमें क्या अन्तर रहा। बहुत लोगों का अनुमान है कि भारत की मृतक देह में प्राण आने का यह शुभ शकुन है। दो क्या हमारा दस दल क्यों न हो जाय हमारी जातीयता में जागृति, अवश्य पैदा हो चली है। अस्तु।

जागृति इनमें पैदा हो गई है सो इससे मालूम होता है कि प्रति दिन गरम दल बढ़ता ही जा रहा है। २२ वर्ष की कांग्रेस में जो नरम लोग न कर सके उसे ये दो ही वर्ष में कर गुज़रे। जो अब नरम हैं उन्हीं के सन्तान पीछे गरम दल वाले हो जांयगे। इसमें सन्देह नहीं इस दुर्घटना से बहुत लोग हताश हो गये हैं और हमारे शत्रुओं की बन पड़ी है पर भविष्य अवश्य चमकीला और उत्साहवर्द्धक है। हमारे शासकों की बुद्धि ऐसी ही कायम रही और वे दिन प्रति दिन अधिक २ कड़ाई करते गये तो सर्वसाधारण में अशान्ति बढ़ती रहेगी। पायोनियर आदि ऐंगलो इण्डियन पत्र तथा विलाइत के लंडन टाइम्स इत्यादि पत्र अपने कर्णकटु लेख से उस अशान्ति को और अधिक सुलगा रहे हैं। हम विजयी जाति के हैं इस अभिमान में चूर चूर अपने लेख से भी हमारा मर्म ताड़न करने से नहीं चूकते। लंडन टाइम्स लिखता है The Moderates will be listened-to afresh but they should not a-k forthe moon. "नरम दल वालों की दरख़ास्त पर भरपूर ख़्याल किया जायगा पर उन्हें चाहिये वे चांद न मांगे" अर्थात् फुसलाने के ढंग पर दो एक बात उनके मन की कर दी जायगी, पर उन्हें चाहिये कि वे समझ कर अपनी औकात के माफ़िक मांगे। राज्य-प्रबन्ध की असिल बातों को जैसा टैक्स कम करना खिराज वसूल करना, बड़े से बड़े ओहदे हिन्दुस्तानियों को दिये जाना इत्यादि बातें वे न मांगे। कहावत है "अतिप्रसन्नो दमडीं ददाति" जब हम अपने को प्रगट कर दिखादेंगे कि राजशासन की योग्यता में हम सब भांत लायक किसी अंश में तुमसे कम नहीं हैं तब भी हमे वही दास रहना पड़ेगा तब हम तुमसे क्यों मांगने जांय गरम दलवालों की यह पालिसी सब तरह प्रशंसनीय है। गरम दल का सिद्धान्त है हमे चाहिये हम चुपचाप सब सहते जांय पर

अपने आप अपने पैरों खड़े होने के प्रयत्न से न चूकैं, इनसे कुछ मांगना या इनका किसी बात में सहारा चाहना व्यर्थ और निरी मूर्खता है। गरम दलवालों के मुखियों की यह अवश्य बड़ी भूल कही जायगी जो इस राष्ट्रीय महासभा की कारवाइयों में उन्होंने विघ्न डाला। मान लिया जाय राष्ट्रीय सभा गवर्नमेंट की खुशामद में लगी है और भिक्षा की भांत अपना हक्क मांग रही है जो उनकी समझ में सर्वथा भूल है तो यही बात देश की भलाई के लिये क्या कम है कि इतने लोग एक ठौर इकट्ठा हो राजनैतिक विचार में लग देश के उद्धार की बात सोचते हैं, और नई २ उक्ति युक्ति निकाला करते हैं, सिवा इसके कांग्रेस के साथ ही साथ और न जानिये कितने तरह के कानफ्रेंस कमेटी तथा परिषद् का अधिवेशन बरसवें दिन हुआ करता है। हमारा राजनैतिक जोश साल भर सुस्त पड़ा रह एकसंग उभड़ उठता है इन सब बातों को सोच बिचार यह अवश्य कहा जायगा कि तिलक महाराज से भूल हुई और जो कहीं ईर्षा वश लाग में यह काम उन्होंने किया है जो आगे चल उनके कामों से आप ही प्रगट हो जायगा तो उनकी यह कारवाई बिल्कुल बेजां है। किन्तु हम सरीखे छोटी बुद्धि वाले ऐसे बड़े लोगों को दूषित ठहरावें यह सर्वथा छोटे मुंह बड़ी बात है इससे उचित है कि चंचल लेखिनी को आगे बढ़ने से रोक चुप हो बैठ रहें। और भगवान् से प्रार्थना करें कि इस दक्षयज्ञ विध्वंस की फिर पूर्ति हो और यह पहले से भी अधिक बलवान् हो।

(मनुष्य के जन्म लेने का उद्देश्य)

प्यारे मनुज! पूर्व में तूने, अच्छा कर्म कमाया है।
निस्सन्देह रतन यह नरतन, बड़े भाग से पाया है॥
तिस पर अच्छा देश वेश, सब दैव कृपा से होता है।
पै तोहिं धिक् पाकर फिर इसको, आंख बन्द कर सोता है॥
नहीं सोचता कुछ भी मनमें, किस कारण जग आया है।
जग का सिरजनहार कष्ट सह, क्यों कर तुझे बनाया है?
इन बातों पर मनमें अपने, सदा ध्यान करना चहिये।
क्यों कर आया यहां और अब, तुझको क्या करना चहिये?

तुझे जन्म ले पृथ्वी तल पर निज कर्तव्व करना चहिये।
धर्म सहायक करके अपना, देश दुःख हरना चहिये॥
प्यारे मानव! वही भूमि पर, धनी देश कहलाता है।
जो निज कर्तव्व पालक जनसे, पूरा भरा सुहाता है॥
जन्म भूमि जिस पर तू जन्मा, वही तिहारी माता है।
अर्थ, धर्म, अरु काम, मोक्ष, वह चारो फल की दाता है॥
वही तुझे अति कष्ट सहन कर, सब प्रकार सुख देती है।
अंत समय भी गर्भ में अपने वही तुझे रख लेती है॥
तू है ऋणी कृपा का "उसकी", जो वह करती है तुझ पर।
इसके बदले तू भी उस की, तनमन धन से सेवा कर॥
सब बिधि उस की रक्षा करना, मुख्य धर्म यह तेरा है।
द्वेष कपट की बुद्धि त्याग कर, जान सकल जग मेरा है॥
जो जन्मे हैं इस पृथ्वी पर, वह सब तेरे भाई हैं।
क्या हिन्दू, पारसी, मुसल्मां, क्या जो बने इसाई हैं॥
एक दूसरे से आपस में, रहे सदा तू मिल जुल कर।
यह शरीर है थोड़े दिन का, कभी इसे मत जान अमर॥
जब तक तू है बना जगत में, चूक न अपने कर्तव्व से।
नहि कृतघ्न कहलाएगा जो, है निकृष्ट पदवी सब से॥
विविध शिल्प विद्यादि गुणों से, "उसे" रचित करना चहिये।
बन कर वीर प्राण तन, मन, से, उसका दुख हरना चहिये॥
जो मनुष्य निज पौरुष बल से, अपना काम चलाता है।
ईश्वर स्वयं सहायक बन कर, उस को योग्य बनाता है॥
प्रजा जहां की निजहाथों से, अपनी वस्तु बनाती है।
नहीं किसी के आश्रित रह कर, अपना काम चलाती है॥
वही देश होकर स्वतंत्र फिर, दिन दिन उन्नति पाता है।
पृथ्वीतल पर औरों के हित, उदाहरण बन जाता है॥
जग आकर निज कर्तव्व करना, यह है जीवन का उद्देश।
करो कराओ बन्धुगणों से, यह कह मैं करता हूं शेष॥

समय॥

समय राव से रंक बनाता रंक को राव बनाता है।
समय बिगड़ते ही सब कौतुक मिट्टी में मिल जाता है॥
कभी बना कर विद्यासागर महिमा अधिक बढ़ाता है।
कभी बना कर काठ का उल्लू जगमें हंसी कराता है॥

कभी सवारी घोड़ा हांथी रथ पर कभी बिठाता है ।
　　फटे वस्त्र पहना नंगे पग चहुं दिस कभी फिराता है ॥
कभी महल औ बाग बगीचे सेवक संग चलाता है ।
　　कभी उच्च कुल होने पर भी दास कर्म करवाता है ॥
कभी प्रकट कर अच्छी ऋतु के अन्न अधिक उपजाता है ।
　　कभी महा बिकराल काल कर दानों को तरसाता है ॥
कभी जंगली जाति सभ्य कर दिन दिन शक्ति बढ़ाता है ।
　　कभी सभ्य से सभ्य जाति की महिमा धूल मिलाता है ॥
कभी देश, धन, अन्न, बुद्धि, बल, विद्या युक्त कराता है ।
　　पराधीन कर कभी अपौरुष सर्बस बुद्धि हराता है ॥
इस प्रकार यह समय सदा से निज प्रभाव दिखलाता है ।
　　नीचा कर फिर उसी को ऊंचा चक्र समान घुमाता है ॥

माधव शुक्ल ।

जुबिली ।

हमारे पढ़ने वाले चौंक उठे होंगे कि यह जुबिली कैसी । महाराणी विक्टोरिया की उनके जीवन काल में एक की कौन कहे रजत, स्वर्ण और हीरक के नाम से तीन बार जुबिली की गई । नियमानुसार ३० वर्ष बीत जाने पर जुबिली मनाने का क्रम है । यों तो हमारे प्रभुवरों के मन की बात है वे जब चाहें तब जिस बात की चाहें उसी की जुबिली कर सकते हैं। महाराज एडवर्ड सप्तम को राज करते अभी १० वर्ष भी नहीं हुये नहीं तो इस महामारी और अकाल की पीड़ा में भी एक जुबिली उत्सव मना डालते और सभों को उसे मानना ही पड़ता । जब यह है कि १० वर्ष के थोड़े समय में भी जुबिली हो सकती है तब हमें तो ३० वर्ष हो गये और ३० वर्ष तक हमी अकेले प्रदीप को निरन्तर सम्पादन करते रहे तो क्या अनुचित है कि हम अपने आप अपनी जुबिली कर डालें पर एक चना भार नहीं फोड़ सक्ता इससे इस कार्य में अपने प्रेमी पाठकों की भी सहायता आवश्यक है । ऐसे अवसर पर ठाकुर गदाधर सिंह को विशेष धन्यबाद देना चाहिये जिन्होंने हमें प्रोत्साहित किया है । हमारे प्रेमियों को प्रयाग के अभ्युदय पत्र में इसके लिये सूचना दी ।

हम भी अभ्युदय में प्रकाशित उनके मन्तव्य को सर्वथा उत्तम मानते हैं यदि ५०० ग्राहक हो जाते तो इस जुबिली की यादगारी में प्रदीप ५० पृष्ट का कर इसका आकार बढ़ा देते और १) अधिक इसका मूल्य कर २॥) में इसे सर्वांग सुन्दर बना देते। अपने प्रेमियों से प्रार्थना है

और यही हमारी जुबिली मनाना है कि वे आगे से २॥) अग्रिम मूल्य भेज दें और इसके ग्राहक बढ़ाने का प्रयत्न करें जिसमें इस मनोरथ में हमें सफलता प्राप्त हो।

(नागरी विनय)

राग पीलू।

नाथ! यह दुखिनी कहत पुकार।
तुम बिन नाथ रह्यो अब नहिं कोउ मो दुःख टारनहार।
तासे बिनवौं दशा आपनी सुनियो दया विचार॥ नाथ०
प्रिय कितेक प्रानहुंते मम सुत हरि चन्द सम सुकुमार।
निर्दय काल तिनहिं हरि मोपै कीन्ह्यों वज्र प्रहार॥ नाथ०
दुख सागर में परि अभागिनी मैं डूबत मझधार।
वेगि लगावहु पार नाथ अब तुम बिन कौन हमार॥ नाथ०
रही लगाए आस जिनहिं पै करिहैं मम उद्धार।
ते बनिदास अतिहि "उर्दू" के ह्व गए निपट गंवार॥ नाथ०
धर्म कर्म की बात भुलानी खुल्यो कुपंथ को द्वार।
काह कहौं दिन दिन तव "भारत" होत जात निःसार॥ नाथ
मोको तजि औरन पहं धावत का मति भयो विकार।
सर्वस भरो न सूझत कछु जनु "दीपक तर अंधियार"॥ नाथ०
फंसि कुबुद्धि महँ यदपि लेत नहिं सुधि अब कछुक हमार।
तदपि अहैं मम परम हितैषी बहु हिन्दू परिवार॥ नाथ०
इनकी बुद्धि सुधारहु स्वामी दुर्मति सकल संहार।
याही में मम अरु भारत को होइ है अति उपकार॥ नाथ०
अरु इनकी सब शक्ति बढ़ावहु करैं प्रीति व्यवहार।
करि सुदूर "उर्दू" पापिन को मोहिं लगावहिं पार॥ नाथ०
हे 'राघव'! यादवपति! माधव! दीनन के हितकार।
भवभय हारन! मो दुख टारन में न करहु अब आर॥ नाथ० मा० शु०

नामावली संकीर्तन।

आदि अन्त में मंगल पाठ यह हम आर्यों का अनादि काल से क्रम चला आया है। उसी के अनुसार यह वर्ष का अन्त है तो विघ्नविदारक मंगलकारक भगवान् का नाम संकीर्तन सबभांत शुभ है।

वेदान्त वेद्य—सिद्धान्त सेव्य—सत्चित् आनन्द घन—मुनिमनमानस विहंग।

संसृति सन्तरण सेतु—अघओघ दवदलनहेतु—
श्रीदश्रीशश्रीनिवास—सत्यधाम—सत्यकाम—गुणगणगणनालला‌म ।
कंजारुण लोचन-पाप बिमोचन-भवभय मोचन-देवनुते ।
प्रणतारति भंजन-विपत्प्रभंजन-दुष्टदल गंजन-गोपपते ।
भक्त भयहारी-संत सुख कारी-जानकी जानि नमोस्तु ते ।
केशव माधव जन सुखकारी-यादव यमुना तीर बिहारी ।
श्रीधर मथुरानाथ खरारी आद्य अनन्त अनघ असुरारी ।
अरविन्द नयन-अरविन्द नाभि-कमलायत लोचन-श्रीमुरारी ।
विश्वाश्रय-विश्वंभर-बिष्णो-बिश्व विमोहन-पाहि विभो ।
राधा रमण-श्रवण सुखदायक-साधु सहायक-कृष्णंहरे ।

जातीय उन्नति ।

क्या वह पौधा उग सकता है, और बड़ा वृक्ष हो बढ़ सकता है, यदि वह ऐसी जगह में कर दिया जाय जहां धूप और हवा न पहुंचे । इसी तरह क्या कोई जाति उन्नति कर सकती है यदि वह दासत्व के कटहरे में बन्द हो ? पैरों में गुलामी की बेड़ियां और हाथों में हथकड़ी पड़ी हो ? भारत की अवनति का आरम्भ कब से हुआ ? भारत का इतिहास एक बार ध्यान से देखा जाय तो मालूम होगा कि हमारे शिल्प हमारे साहित्य और हमारे विज्ञान की अवनति उसी समय आरम्भ हुई है जब से हमारे में से राजनैतिक शक्ति जाती रही । इसमें किसी का दोष नहीं है इस गुलामी का फल समस्त दास जातियों को मिलता आया है और भविष्य में मिलता रहेगा । जो जाति दासत्व में पड़ी है उसको सब से प्रथम अपने उदरपोषण की फ़िक्र होती है और जो कुछ समय बचा भी तो दासत्व उस जाति के विचार और भावों को ऐसा गिरा देता है कि पशु तुल्य अपना जीवन बिता देने के सिवाय आगे कुछ उन्नति की उसे सूझती ही नहीं । भारत की वर्तमान दुरवस्था की ओर ध्यान दिया जाय तो निश्चय हो सकता है कि यह कहां तक सत्य है । भारत ही क्यों और कितने देश ऐसी ही दशा में पड़े यही दशा भुगत रहे हैं और ऐसी अवस्था में पड़ यदि वह स्वतंत्र होने का प्रयत्न करें तो इसमें अचरज ही क्या है । भारतवासियों को यदि अपने पूर्व पुरुषों की सन्तान होने का अभिमान है और अपनी पहिली अवस्था

में फिर भारत को पहुंचाना स्वीकृत है तो उचित है कि अपनी निद्रित दशा का विसर्जन कर उठैं और अपने को संभालें। असभ्य जाति भी बहुत दिनों तक निद्रित दशा में रह पीछे सभ्य जाति का संपर्क पाय सभ्यता की उत्कृष्ट सीमा तक पहुंच गई तब हम तो उत्तम कोटि की सभ्यता की सीढ़ी पर चढ़ नीचे गिर गये हैं हमें अपना पहिला गौरव प्राप्त करना सहज है। केवल इतनी ही त्रुटि हमारे में आ गई है कि हम अपने आप कुछ करना भूल गये हैं और हर एक बात में दूसरे का सहारा लिया चाहते हैं जो हमारी जातीय उन्नति का बड़ा बाधक है। इसलिये शारीरिक तथा मानसिक बड़े२ काम करने का अवसर हम प्राप्त किया चाहते हों और यह भी चाहते हों कि धर्म सम्बन्धी कार्यों में भी पहले के समान हमारी कीर्ति गूंजने लग जाय तो स्वतंत्रता पहली सीढ़ी है। जिस अविश्वास भय और चिन्ता की दशा में परतंत्र हो दास वृत्ति वाले रहते हैं उसमें कदापि संभव नहीं कि हम किसी तरह की उन्नति कर सकें। इस दशा में जो कुछ उन्नति वे करते भी हैं तो उस का पूरा फ़ाइदा वेही उठाते हैं जो उनका शासन कर रहे हैं। ऐसे समय बायकाट "वहिष्कार" एक मात्र दास्य भाव के बरकाने का सुगम उपाय है। इसी के द्वारा आत्मीय बल का संचार संभव है। परमात्मा की कुछ ऐसी ही प्रेरणा मालूम होती है। जिससे स्वदेश का अंकुर मन में लोगों के जमने लगा है देशभक्ति बल पकड़ती जा रही है। देश में जातीय जोश के संचार का भी कोई अवसर हमारे युवक जन हांथ से नहीं जाते देते उनका उत्साह उनकी सर गरमी भविष्य के लिये बहुत ही शुभ सूचक है इस का प्रतिफल एक दिन बिना मिले न रहेगा। खन्ना॥

बाल भागवत।

यिण्डयन प्रेस को बालकों से कुछ विचित्र स्नेह सा मालूम होता है। बाल सखा पुस्तक माला की यह छठी पुस्तक है बाल भागवत का यही पहला भाग है दूसरे भाग में कदाचित् दशमस्कंध का श्रीकृष्णचरित हो पुस्तक बालकों के लिये अति उपयोगी है पर इस छोटी पुस्तक में कहीं २ प्रचलित उपदेशक श्लोकों का समावेश होता तो अति उत्तम होता। जो बालकों के कण्ठस्थ करने में उचित समझा जाता मूल्य ॥) सर्वसाधारण में प्रचार होने के लिये विशेष मालूम होता है।

पता—वही इण्डियन प्रेस प्रयाग।

प्रवासी।

पाण्डेय लोचनप्रसाद जी का यह प्रथम प्रयत्न सराहनीय है। पर कहीं २ तुक बन्दी में कविता कुछ कर्ण कटु, वा भद्दी सी मालूम होती है जो कुछ हो ऐसे ही अभ्यास कराते २ कुछ दिनों में यह अच्छे कवि हो जांयगे।

पता—पाण्डेय लोचनप्रसाद बालपूर
पोस्ट चन्द्रपूर ज़िला बिलासपूर सी० पी०

कमला।

आज मुद्दत से सरस्वती अपने गुण को प्रयाग के इण्डियन प्रेस से प्रकाश तो कर ही रही थी पर कमला (लक्ष्मी) का अभाव था सो वह भी कलकत्ते के कुछ महानुभाव सम्पादक समिति द्वारा यह बात मिटा सी गई और इस बात को एक तरह से झूंठा साबित सा कर दिया कि "लक्ष्मी सरस्वती (खासकर भारत में) एक स्थान पर नहीं तिष्ठती" प्रत्युत इसके इस कमला से यह मालूम होता है कि छपाई, सफाई, चित्र आदि में सरस्वती को भी नीचा दिखाने की इच्छा सी रखती है पर एक विषय के लेख इसमें होते हुये भी यदि यह कमला वर्तमान विषय राजनैतिक आदि अपनावे तो निस्सन्देह सरस्वती से बढ़ जाने में कोई सन्देह न रहेगा और बिना राजनैतिक के पूर्ण तरह से कमला (लक्ष्मी) को हथियाना असम्भव सा है वार्षिक मूल्य ३) पता—मैनेजर—कमला

नं०—११९ हरीसन रोड़ कलकत्ता

REGD. No. A. 308.

हिन्दी प्रदीप

मासिक पत्र।

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट ह्वै आनन्द भरै।
बचि दुसह दुरजन बायु सों मणिदीप समथिर नहिं टरै॥
सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामे जरै।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै॥

जिल्द ३० } जनवरी १९०८ } संख्या १

विषय सूची।

प[illegible] भट्ट सम्पादक और प्रकाशक के

आज्ञानुसार [illegible] लप्रसाद त्रिपाठी ने अभ्युदय प्रेस प्रयाग में छापा

सभायें पुस्तकालय और विद्यार्थियों तथा असमर्थों से अग्रिम २॥) समर्थों से ३।=) पिछले अङ्कों की पूरी जिल्द फी जिल्द मै पोस्टेज २)

-:॥ श्रीः ॥:-

जिल्द ३० | जनवरी सन् १९०८ ई० | सं० १

नूतन वर्ष का नूतन संविधान।

नये साल की इस नई सजावट के बारे में हम गये अंक के जुबिली शीर्षक लेख में सूचना दे चुके हैं। ईश्वर की कृपा से आज हमें वह शुभ अवसर प्राप्त हुआ। अपने प्रेमीमित्रों की प्रेरणा से प्रदीप को वृहत् आकार में प्रगट कर रसिक पाठकों को अर्पण करते हैं और उनसे सादर विनय करते हैं कि वे अपने स्नेह से इसे स्नेह (तैल) पूर्ण करते रहैं। क्योंकि अब इसका आकार बड़ा हो गया तो इसमें स्नेह भी अधिक समायगा यह मत समझिये कि आकार बढ़ जाने से प्रदीप का अब वह प्रकाश न रहेगा जैसा २९ वर्ष तक रहा अब इसमें भरती बहुत रहैगी। चित्त को आकर्षण करने वाले लेख न रहा करेंगे। प्रिय पाठक ऐसा कभी मन में न लाना इसमें स्नेह (तेल) छोड़ना तो आप का काम है पर इसे चित्ताकर्षक बनाये रखना मेरे ज़िम्मे है। यद्यपि चिरकाल से हम इसी चिन्ता में थे कि किसी तरह प्रदीप की कुछ उन्नति करैं किन्तु असहाय हो इसे अपनी शक्ति के बाहर समझ अपने इरादे को मुलतवी किये रहे। पर कई एक हार्दिक्य मित्रों के अनुरोध से जिनके हम अत्यन्त बाधित हैं विशेष कर पुरुष रत्न ठाकुर गदाधर सिंह के जिनकी बार २ प्रेरणा से प्रेरित हो हम इस साहस में प्रवृत्त हुये हैं। अब इसमें हमारा

सफलोद्यम होना प्रेमी पाठकों के आधीन है । हमारी मौत ज़िन्दगी तरक्की या तनज्जुली के कर्ता धर्ता विधाता ग्राहक समूह हैं इससे उन्हीं से विनती है कि हमे संभाले रहें बल्कि जो त्रुटि हो उसे सूचित करें हम उसे दूर हटावें और इसकी भविष्य की भलाई का सोपान तैयार करते जायं।

राजा और प्रजा।

सेव्य सेवक मालिक और नौकर तथा पति और पत्नी का सा सम्बन्ध राजा और प्रजा का है। प्रगाढ़ भक्ति के साथ सेवक जो अपने सेव्य की सेवा मन बच कर्म से करता है तो सेव्य उससे सन्तुष्ट हो, उस की सकल कामना पुरै देता है। ऐसा ही उदार कदरदां मालिक खैरख्वाह चाकर की चाकरी से राज़ी हो कृपा दृष्टि की वृष्टि करते उसकी ओर एक बार चितै देते ही समस्त संपत्ति का भंडार उसे बना देता है। इसी के विरुद्ध चालाक चालबाज़ खुदगर्ज़ मालिक शुद्ध भाव चाकर की चाकरी का मन से कायल होकर भी अपनी चालाकी से नहीं चूकता। सेवक की सिधाई और उसके अनेक उत्तम गुणों की सराहना अपने फुटहे मुख से न कर उसमें दोष ही दोष देखने को सदा दिव्य दृष्टि रहता है। इस लिये कि खुदगरज़ी का पुतला स्वार्थान्ध वह स्वामी जो अपने सेवक की सिफ़तों को क़बूल कर लेता है तो उसे कायल हो जाना पड़ता है और अपने बराबर वालों में उसकी नौधरी होती है। ऐसा ही शुद्ध भाव से पति की सेवा करने वाली पति प्राणा पत्नी पति चाहो कैसा ऐगुणी कुरूप और कड़ाई करने वाला हो पर वह साध्वी मन बच क्रम से उसकी सेवा टहल से मुख नहीं मोड़ती। जहां राजा और प्रजा दोनों अपना २ काम भरपूर समझते हैं और अपना २ काम कर रहे हैं वहां का भला क्या कहना "रमन्ते सर्व संपदः" विचार तो इस समय वहां का किया जाता है जहां प्रजा सिधाई के साथ अपना काम कर रही है पर वद्द मुहि मालिक के समान राजा अपनी चालाकी की चाल से नहीं चूकता। सब तरह अपना स्वार्थ साधता है

और प्रजा का प्राण सम धन बटोरे लेता है "एकस्य क्षणिका प्रीति रन्यः प्राणैर्विपुज्यते" प्रजा तो यहां तक क्षीण धन हो गई है कि अकाल की कौन कहै सस्ती में भी अधिकांश लोग एक जून खा कर रहते हैं पर राजा के वर्ग वाले प्रजा के धन से गुलछर्रे उड़ा रहे हैं और प्रजा वर्ग को अशिष्ट असभ्य अर्द्धशिक्षित और मूर्ख बना रहे हैं। उनकी आगे बढ़ने की चेष्टा पर हँस रहे हैं करावलम्ब देना तो एक ओर रहा उन्हें हतोत्साह किया चाहते हैं। जब कभी किसी बात में बहुत कहने सुनने से करावलम्ब भी देते हैं तो वह चाल के साथ चतुराई से खाली नहीं रहता। उस करावलम्ब में भी निज का कुछ न कुछ फ़ाइदा रहता ही है। बद्ध मुष्टि तो यहां तक कि सरकारी कोई महकमा नहीं है जिसमें उस महकमे के ख़र्च अदा कर फाइदा न रहे। पहले के बादशाह लोग ऐसी बात करते थे जिसमें उनके खज़ाने का रुपया प्रजा में फैले अब शासन के काम में यहां तक बनियई देखी जाती है कि बहुत ही छोटे फ़ाइदे पर सरकार की नज़र रहती है। जैसा पहिले चिट्ठी का टिकट बेचने वाले को आध आना या एक पैसा रुपया कमिशन दिया जाता था दो चार जगह बड़े शहरों में टिकट लिफ़ाफ़ा और कार्ड मिलते थे अब उठा दिया गया केवल शहर के डाकख़ानों में टिकट मिल सक्ता है। मान लो साल में दो चार हज़ार रुपये का फ़ाइदा सरकार को इससे हुआ होगा पर लोगों को तकलीफ़ और तरद्दुद कितना इसमें हुआ कि एक पैसे का कार्ड लेना हो तो आध मील चल कर पोस्टआफ़िस में आओ तब टिकट मिलै। फिर वहुधा हर जून वहां इतनी भीड़ रहती है कि रेलवे स्टेशन का टिकट घर इसके सामने मात है। जब राजा को यहां तक निज लाभ पर दृष्टि है तब प्रजा निष्किंचन न होने से कहां तक बच सक्ती है। स्वदेशी की तरक्की देख सरकार को यहां के मज़दूरों और कुलियों पर दया आई है। फ़ेक्टरी कमिशन निकाला गया है जहां २ कपड़े आदि की मिलें हैं वहां २ यह कमिशन जायं कुलियों का हाल दरियाफ़्त करेगी और कोई ऐसा ऐक्ट पास कर देगी कि यहां के माल से विलाइत का माल सस्ता पड़े और

इस कमिशन में जो खर्च होगा वह इण्डिया गवर्मेंट के माथे अवश्य ही पढ़ेगा। सरकार हम लोगों में "प्रइमरी" और "टेक्निकल इज्युकेशन" प्राथमिक तथा शिल्प-शिक्षा का प्रचार किया चाहती है गवर्मेंट का यह प्रस्ताव सर्वथा सराहने लायक़ है किन्तु तब जब कि इससे हमारी उत्तम शिक्षा में बाधा न आवे। यदि बढ़ई लुहार का काम सिख हमारी उत्तम शिक्षा में हानि आई और उच्च शिक्षा की ओर गवर्मेंट मन्दादर हो गई तो इस प्राथनिक और शिल्प शिक्षा को नमस्कार है। गवर्मेंट की हर एक बातों में ऐसा ही देखा गया है कि जिस रास्ता पर हम नहीं गये उस ओर हमे ले जाती है पर जब हम अपनी दिमाग़ी कूवत से उसमें पारङ्गत हो पैरने लगते हैं तब उसमें हमे रोकने की फ़िं-फ़िर में लगती है। कोई समय था जब हम सर्वथा पश्चिमी शिक्षा से अनभिज्ञ थे तब हमारे में शिक्षा का प्रचार किया गया अब हम जब उसमें निपुण हो उनकी नीति का मर्म जानने लगे तो अब उत्तम शिक्षा देने में संकोच होने लगा। सरकार की गूढ़ नीति का जो कुछ भीतरी मतलब हो पर इतना अवश्य कहा जायगा कि प्रजा को राजा की ओर से छनक अवश्य हो गई और वह छनक रोज़ २ बढ़ती जाती है। इसी से हम कहते हैं राजा और प्रजा में प्रेम भाव उठता जाता है। प्रजा का प्रेम तो है पर राजा में चाल और स्वार्थ उस प्रेम को घटाने को घुन सा लगता जाता है। राज चिरस्थायी होने के लिये इस घुन को हटाने में ही कल्याण हैं

रशियन्, फ्रेंच, ज़रमन् आदि यूरोप की और २ जातियों के सामने इण्डियागवर्मेंट बड़े अभिमान के साथ कहती है कि हिन्दुस्तान में हमारा शासन बड़ा उदार शासन है। किन्तु अन्य जाति वाले इस उदारता का मर्म क्या जानैं। राजा का तो क्या प्रजा का भाव राजा की ओर निस्सन्देह उदार है। यहां के थोड़े से पढ़े लिखों को छोड़ साधारण लोग राजशासन Palitics में इतना अनभिज्ञ हैं कि राजनैतिक एंच पेंच कुछ समझते ही नहीं। धर्म शास्त्रों में जैसा राजा का मान लिखा है वैसा ही वर्तते हैं। विदेशी राजा है या स्वदेशी इसको बिल्कुल निर्खे न कर सरल अकुटिल भाव से राजा की आज्ञा मानने में उद्यत हैं। कितने तो ऐसे भी हैं कि

गुलामी में पड़े२ मुल्की जोश उनमें इतना बुझ गया है कि सर्वथा निराश हो कह रहे हैं। "कोउ नृप होहिं हमैं का हानी। चेरी छोड़ न होउब रानी"। इस दशा में गवर्नमेंट अपने उदार शासन का जितना घमण्ड करे सुन लेना पड़ता है। इस उदार शासन ही की पोल खोलने के बदौलत आज दिन कई एक सम्पादक जेल का क्लेश झेल रहे हैं। हमारी गवर्नमेंट पर ईश्वर सानुकूल है सब भांत उसका सितारा चमक रहा है। भाग्यवश ऐसे लोग शासन के लिए मिल गये हैं कि इस हालत में जो कुछ ये कहैं सब सोहता है। पुराने क्रम के लोगों में राजनैतिक जोश का आना एक ओर रहे डरपोक इतने हैं कि उनका कथन है "राजसेवा मनुष्याणा मसि धारावलेहनम्। पंचानन परिष्वंगो व्यालोवदन चुम्बनम्" मनुष्यों के लिए राजसेवा तलवार की धार को चाटना है। शेर के साथ कुश्ती लड़ना है और नागिन के मुख को चुंबना है। ऐसे ही ऐसे खयालों ने देश को इस दशा में ढकेल दिया अब जो उनको चिताने की फ़िकिर की जाती है तो वह विद्रोह में दाखिल किया जाता है। क्या कहना उदार भाव का अन्त है एक ओर चालाकी और चतुराई का छोर है। दूसरी तरफ़ सिधाई और गावदीपन का खातिमा है। इस दशा में भारत दलित हो दिन दीन दीन होता गया तो कौन सा ताअज्जुब है।

मेघदूत और नरम गरम सन्देश।

(लेखक एक इम्पीरियलिस्ट)

धूम ज्योतिः सलिल मरुतां सन्निपातः क्व मेघः ।
सन्देशार्थाः क्वपटु करणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे ।
कामार्त्ताहि प्रकृति कृपणाश्चेतना चेतनेषु ॥ (मेघदूत)

कहां धूम, तेज, जल, वायु, का समूह मेघ और कहां ज्ञानेन्द्रियों संयुक्त मनुष्यों के सन्देश ! ऐसे साधारण विवेक से भी शून्य, किसी

कार्य्य की कामना रखने वाला व्यक्ति अपने सन्देश पहुंचाने के लिए जड़ मेघों से याचना करता है।

महाशय गण! क्या यह विड़म्बना नहीं है? जान पड़ता है कि कवि कालिदास ने इस उक्ति की कल्पना हमारी आज की स्थिति के विषय चितौनी के लिए की थी। सच कहा है। कोई कामना रखने वाला मनुष्य अपने बात की काट छांट में जड़ चेतन के विवेक से भी रहित हो जाता है।

यह बात कुछ बनावटी नहीं है। प्राकृत अर्थात् स्वाभाविक ही होती है। आज से नहीं—जब से बाबा आदम की औलाद संसार में है तभी से यह बात देखी और जानी मानी हुई है॥

फिर जो हम आज अपनी आवाज़ उसी अकाश के मेघों द्वारा लंडन स्थित मालिकों तक पहुंचाने की कोशिश करते हैं। हां कह लीजिये कि आकाश कमल को ही कामना करते हैं। तो हमें दोष क्यों दिया जावे?

हम अपने साधारण विवेक-मेघदूत के यक्ष समान जड़ चेतन विवेक-को खोडालें तौभी तो हम उक्त कवि के कथनानुसार प्रकृतिस्थ ही हैं? अर्थात् अपने स्वभाव के अनुकूल ही कर रहे हैं।

हम ग़रीब हिन्दुस्तानी प्रजा के प्रतिनिधियों में आज नरम और गरम दो दल हो गये हैं, हम प्रजागणों की समझ में तो दोनों हो दल हम मरभुखों को भर पेट अन्न दिलाने की एक सी ही दलालत करते हैं।

नरम प्रतिनिधि हमारी सनातन नरमाई को जानते हुए, हमारी निर्बलता; निःसहायता, और निरावलम्बिता को देखते हुए—हां हां! हमारी मरी कङ्काल को अपने आगे धरी हुई देख दुःख के कारण विवेक को भुला कर भी, हमारी कामना, वही उदरम्भरी कामना को आकाश में प्रतिध्वनित करके शारदीय मेघों द्वारा हमारे मालिकों के मकान (Home) तक पहुंचाने की कोशिश करते हैं। जिससे उनके दिल में दया का सञ्चार हो और ये मरी कङ्कालें फिर से मानुषी संसार में मनुष्यों के बीच जगह पावें।

और दूसरी तरफ गरम महाशय गण संसार भर की ऊंच नीच अवस्था और उतार चढ़ाव को सामने धर विवेक दृष्टि से देखते हुए—हां ! उसी तरह की दूसरी जातियों के पतन और उत्थान का नमूना लेकर ही हमारी मरी कङ्कालों के पावों में पट्टी बांध गरमाई पहुंचा कर— खड़ा करने का उद्योग करते हैं । और हाथ में लकुटियां थमा कर मेहनत मज़दूरी करके पेट भरने की सलाह देते हैं ।

महाशय गण ! अपही बतावें, हमारे लिए इन दलों में से कौन विशेष श्रद्धेय और प्रेय है ?

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, केहिके लागौं पांय ।
बलिहारी उन गुरुन की, गोविन्द दियौ लखाय ॥

प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ वेब (Alfred Webb) साहब कहते हैं—

Subject peoples are abnormally sensitive to the feeling towards them of their rulers.

राजा जाति की की हुई निन्दा स्तुति से पराधीन जाति के चरित्र में सहज ही परिवर्तन हो जाता है ।

यह बात हमारी निज ऐतिहासिक भी है ।

कर्ण को बल हीन करने के लिए शल्य ने उसकी बड़ी निन्दा की थी और अभीष्ट परिणाम भी पाया था ।

हम अपने देश को कृषि प्रधान और अपने को कृषक कहते कहते अपना सभी उद्योग, धंधा, बनिज, व्यौपार, कारीगरी और सिपाहगीरी को खोकर कोरे किसान—किसान से भी गये बीते—खेतों की गिरी पड़ी कणिकायें चुंगने वाले केवल कणाद बन गये ।

अतएव अपनी दीनता और हीनता के सन्देशों से आकाश को गुंजायमान करने और अपने कलरव से राजा के अमन चैन में बाधा डालने की अपेक्षा क्या यह उचित कर्तव्य न होगा कि बहुत लोग अपने मालिकों की बात को मान कर स्वयमेव अपनी मेहनत मजूरी में लग जायं । गैरों को अपनी मजूरी में न लगावें न लगाने दें । और भर पेट अन्न अपने आप पैदा करके स्वयम् सुखी और मालिकों को भी प्रसन्न करें?

हमारे महामान्य महाहितैषी भूतपूर्व बड़े लाट कर्ज़न साहब भी यही कह गये हैं कि :–

No nation can be truly great unless it patronises its own arts and letters.

कोई जाति महत्वं को नहीं प्राप्त कर सकती जब तक कि वह अपनी कारीगरी और अपनी निज भाषा का पूरा२ आदर नहीं करती।

सोभाई ! हमारे प्रति-निधि-गण चाहे जैसी दलीलें देवें। दल चाहे कितने ही बनजायं, मत और मतान्तर चाहे कितने ही क्यों न उठें बैठें। रोम वाली रास्ताओं की भांति, तथा सब देवों की पूजा केशव भगवान् के प्रति चली जाने की तरह, याचना, कामना, अभीष्ट, उद्देश्य, और आवश्यकता महा पुरुष कारलाइल के शब्दों में केवल वही है, जो अत्र, तत्र, सर्वत्र, मनुष्य जाति के लिए एकसा है। वह यह है कि :–

Work and wages, the two prime necessities.

"काम" और "दाम" मनुष्य के लिये यही दो आदमी की जरूरत हैं। इन्हीं दोनों के मिलने से उसका जीवन, कम मिलने से संकट और न मिलने से मरण समझना चाहिये।

(फूट)

बसन्त तिलका छन्द ॥

रे फूट ! ऐक्य, जनप्रेम, विनाशकारी।
हिन्दुन् निरन्तर महादुख देन हारी ॥
विद्या सुबुद्धि तोहिं देखत दूर भाजैं।
होती जबै मनुज बीच कृपा तिहारी ॥ १ ॥
जो थी सुनी प्रथम सूर्पनखा पिशाची।
औ ताड़कादि त्रिजटा दृढ़ पूतना सी ॥
सो तोहि देखि मति आवत है हमारी।
वे थीं निदान जिमि दासिनियां तिहारी ॥ २ ॥

जो काज को पुरुष वर्षन में सुधारे।
　　सो तू बिना कठिनता छिन में बिगारे॥
अत्यन्त युद्ध करवाय सभा विदारे।
　　लै आपनो दल समेत जहां पधारे॥ ३॥
तू दृष्टि में अधिक इन्द्रहु ते बढ़ी है।
　　औ बेग में अति समीरहु ते चढ़ी है॥
तेरो प्रभाव लखि ठौर न वेउ आवैं।
　　जे स्वर्गवास करि दैत्य रिपू कहावैं॥ ४॥
तू साधिनी-सुमति-प्रेम-विनासिनी है।
　　औ भारतीय जन-रक्त-पिपासिनी है॥
प्रत्येक मानव हिये बिच बास तेरा।
　　कोई न ठौर जहं होत न तोर फेरा॥ ५॥
प्राचीन काल जब कौरव पाण्डवों की।
　　विख्यात नीति, महिमा, अरु वीरता, थी॥
तू जाय कै तिनहिं बीच अरी कुठारा!।
　　दोनों लड़ाय बहवायसि रक्त धारा॥ ६॥
है बीच की अबहिं बात नहीं पुरानी।
　　श्री पृथ्वीराज जयचंद विषै कहानी॥
वामे बिनास अति हिन्दुन को करायो।
　　औ राज्य छीन परदेसिन को दिवायो॥ ७॥
बाईस वर्ष जेहिं भारत के हितैषी।
　　कीन्हीं सभा विरचि "कांग्रेस" रूप जैसी।
तेईसवीं बरस आज न तोहिं भायो।
　　विद्रोह आपस कराय विसे नसायो॥ ८॥
ऐसे कितेक तब कारज हैं नसाए।
　　जो आजलौं बहुरि कै बन नाहिं पाए॥
रे घोर पापिनि! हिये तव नाहिं दाया।
　　होती अहो! कबहुं नासि न तोर काया॥ ९॥

हे ! आर्य बंधु ! तुम संकट में पगे हो।
निःसार त्यागि सुख नींद अबै जगे हो॥
तासे अहै प्रथम काज यहै तुम्हारो।
लै ऐक्य खड्ग "यह पापिन" को संहारो॥

उन्नति का प्रथम मार्ग

हिन्दी की उन्नति।

सोरठा,

तम न होयगो दूर, बिन "एक भाषा" रवि उगे॥
सुगम भाव भरपूर, "हिन्दी" तासे उचित है॥ १॥
हे ! हिन्दू सन्तान, निज उन्नति यदि चहत हो॥
तो सब मिल करिध्यान, हिन्दी की उन्नति करहु॥ २॥
जन्म्यो हिन्दुस्तान, "हिन्दू" जाति कहाय कै॥
दियो न हिन्दीमान, तौ धिक् ऐसी जाति को॥ ३॥
सकल देश की जाति, जे निज उन्नति चहत हैं।
मुख्य धर्म सबभांति, निज भाषा उन्नति करन॥ ४॥
तासे करत सचेत, आर्य जाति के नवयुवक।
देश सुधारन हेत, करहु जतन चूको नहीं॥ ५॥
हिन्दी केर प्रचार, घर घर होवै देश में।
अरु अपनो व्यापार, करहु सफल तजि दासता॥ ६॥
विषय अनेक न काहि, ढूढ़ि अनेकन ग्रंथ सों।
करि तिन हिन्दी माहिं, सचरावहु निज देश में॥ ७॥
विविध शिल्प विज्ञान, काव्य कला अरु धर्म युत।
सिखवहु निज सन्तान, हिन्दी सरल बनाय कै॥ ८॥
अरु सुविमल इतिहास, गौरव युत निज देश को।
पढ़तहि होत विकास, विनसै माया जाल तम॥ ९॥

तजहु ईर्षा द्वेष, नशा पान आलस कुसंग ।
बंधुन प्रेम विशेष, करहु कपट तजि हिये की ॥ १० ॥
सोचहु टुक धरि ध्यान, विगत दशा निज देश की ।
वही आर्य सन्तान, पै अब क्यों गत ह्वै रहे ॥ ११ ॥
प्यारे बंधु समाज !, एक एक तजि दियेते ।
नष्ट देश तब आज, और न दूजो हेतु कछु ॥ १२ ॥
दशा यदपि अति हीन, बहु बिधि तुमरे देश की ।
धन, अन, बुद्धि, विहीन, बने सबहि बिध दास हो ॥ १३ ॥
तदपि करहुं नहि सोच, समय फेरते होत सब ।
बिना कछू संकोच, निज कर्तव्य लग जाहु अब ॥ १४ ॥
तुम्ही एक अवलम्ब, निज गन भारत देश को ।
ताते न करु बिलम्ब, अपनो धर्म निबाहिये ॥ १५ ॥

माधव शुक्ल

हमारा दास्य भाव ।

इतिहासों से पता लगता है कि असभ्य से असभ्य जाति भी गुलामी के बन्धन से छुट तरक्की और सभ्यता की चरम सीमा को पहुंच गई हैं । हमने अपने पहले के वैदिक ऋषियों के क्रम को छोड़ने के साथ ही दास्य भाव को ऐसा गहके पकड़ रक्खा है कि उससे अपना छुटकार करना चाहते ही नहीं-जहां का धर्म दास्य भाव सिखाता है उस जाति की गुलामी का भला क्या कहना ? कोई भक्त प्रगाढ़ भक्ति के उद्गार में भर अपने सेव्य प्रभु से कहता है त्वद् भृत्यभृत्यपरिचारकभृत्य-भृत्यभृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ" हे प्रभो लोक-नाथ ! आप अपने दास का दास का दास का दास समझ मुझे याद रखिये । नीचे ही ताक रहा है ऊपर को शिर उठाने का मन ही नहीं करता । इसमें सन्देह नहीं ऐसे भक्त जनों का चित्त बड़ाही विमल कोमल सरल और उदार रहा । उन्हें महात्मा और सत्पुरुष मान समाज उनके

पीछे दौड़ी और उनका अनुसरण करने लगी। पर चित्त-वृत्ति उन भक्त जनों की कैसी कोमल सरल और अकुटिल थी सो तो ला न सके दास बनने की बाहरी बात अपने में आरोपित कर दासोस्मि दासोस्मि कहने लगे। कहने क्या लगे जन्म जन्म के दास और गुलाम दर गुलाम हो ही गये। तब इनके यावत् क्रम जितनी बात सब गुलामों की सी हो गई। जिनमें गुलामी की दुर्गन्धि की दूर ही से ऐसी भभक उड़ती है कि सैकड़ों वर्ष तक सभ्यता के गुलाब और केउड़े का इत्र भी अपना असर वहां पहुंचा उसे सुगन्धित नहीं कर सकता। न उस बदबू को दूर कर सकता है। काम तो हमारे दास्य भाव के हई हैं नाम से तो गुलामं न बनते सो हम लोगों में अधिकांश नाम रामदास भगवानदास ऐसे करीह और कटुं लगते हैं कि सुनते ही घिन पैदा हो जाती है। मनु ने शर्मा वर्मा और गुप्त ये तीन उपाधियां द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के लिये रक्खी हैं। शर्म माने सुख के हैं ब्राह्मण अपने ब्राह्मणत्व के उज्वल संस्कार अनुसार ऊज्वल कर्म करता हुआ सबों को सुख पहुचाता रहे। इसी तरह वर्मा के अर्थ रक्षा के हैं क्षत्रिय अपने बल वीर्य से सबों की रक्षा करे। ऐसा ही गुप्त के अर्थभी रक्षा या छिपाना है। वैश्य हर तरह बनिज व्यौपार कर प्रजा का धन बचाता और बढ़ाता रहे। उसी के अनुसार नाम भी इनतीनों के ऐसे होने चाहिये जिनसे उन २ अर्थों का बोध हो न कि सब के सब दास बन बैठे। कहने मात्र को द्विज रहे वास्तव में काम और नाम दोनों से सब के सब शूद्र क्या वल्कि उससे भी बत्तर हैं।

बुद्धिमानोंने उपाय और अपाय दो बात निश्चय किया है। "उपायांश्चिन्तयेत्प्राज्ञस्तथा पायांश्च चिन्तयेत्" किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये उपाय करे और उपाय में कृत कार्य होने पर जो अपाय विघ्न रूप दूसरी बात उठखड़ी हो उसके हटाने की भी तदबीर सोच रक्खे। भक्ति मार्ग वालों ने चित्त को विमल और कोमल रखने की सुगम उपाय नवधा भक्ति बहुत अच्छा सोचा पर उसके साथ ही हमारी अज्ञानता कितना बढ़ेगी सो बिलकुल न सोचा। उसी अज्ञानता का परिणाम

हमारे कौमी जोश पर जा टूटेगा इसका कहीं शानगुमान भी उन्हें न रहा। अस्तु जाय बहै कौमी जोश और देशानुराग चित्त का बिमल और शुद्ध होना ही क्या कम बरकत है सो इस समय के कोरे मूर्ख कुन्दे नातराश भक्तों में वह भी नहीं पाया जाता। जड़ प्रतिमा में तो बड़ा ही भाव भक्ति और प्रेम प्रगट करेंगे पर सजीव अपने किसी दुखी भाई को देख पिघल उठना एक ओर रहा निठुराई के साथ उसको हानि पहुंचाने से न चूकेंगे। क्या यही उनके भक्ति मार्ग का तत्व है ? इस भक्तिने जैसा दास्य भाव को पुष्ट कर रक्खा है वैसा और ने नहीं। भक्ति के साथ वीररस मिला रहता तो कभी इस्से हानि न पहुंचती किन्तु भक्तिमार्ग का प्रादुर्भाव तब हुआ जब देश में सब ओर मुसल्मानो की हुकूमत अच्छी तरह जम गई थी और आर्य जाति अपनी बीरता से च्युत हो चुकी थी। मुसलमानो का संपर्क पाय उनकी सी भोग लिप्सा इनके मन में स्थान पा चुकी थी। परिणाम में भक्ति के साथ शृंगार रस मिल गया। शृंङ्गार में सनी इसी भक्ति ने योगिराज हमारे श्रीकृष्ण भगवान् को अत्यन्त विलासी और रहस्य प्रिय बना दिया। नहीं तो कैसे सम्भव था कि जिन्हों ने गीता का ज्ञान कहा था जिनकी राजनैतिक काटव्योंत ने महाभारत का युद्ध कराय बड़े २ महारथी बीर बांकुरे राजाओं को युद्ध में कटवाय भारत भूमि निर्वीर्य करवा डाला वह ऐसे भोग गिलासी होते। शृंङ्गार और बीर दोनों विरोधी रस हैं एक ही ठौर दोनो नहीं ठहर सक्ते। महाभारत के युद्ध के उपरान्त बुद्धदेव ने अहिंसा परमोधर्मः की शिक्षा से दया विस्तार कर बीरता की जड़ पर कुल्हाड़ा चलाया पीछे भक्ति के साथ शृंगार रस मिल प्रजा को आशिकतन भोग लिप्सू करडाला। बड़े २ राजा भी भक्त बन बैठे। महाभारत के समय का युद्धोत्साह और रण भूमि का प्यार न रहा तो बाहरी शत्रुओं से लड़ता कौन ? परस्पर की स्पर्द्धा और फूट का अंकुर महाभारत ही के समय से जम चुका था जैचन्द्र और पृथ्वीराज के समय वही फूट का बीज वृक्ष के रूप में परिणत हो फलों से लद गया। उधर क्षत्रियों के बीच से बीरता डेरा डंडा उठाय बिदा हुई इधर ब्राह्मण तपः स्वाध्याय सन्तोष संपत्ति

को विसर्जन कर लालची बन वैदिक ऋषियों की आप्तता और ज्ञान खो बैठे। निर्बल और पौरुष विहीन हो जाने से जैसा ईश्वर का सहारा लेना सूझता है वैसा तब नहीं जब हम में बल और सामर्थ्य मौजूद है। भक्ति और प्रतिमा से एक बड़ा लाभ अवश्य हुआ कि जब अत्याचारी मुसल्मान देश भर को दीन इसलाम का पैरोकार किया चाहते थे और हमारे धर्म ग्रन्थों को जला कर उच्छिन्न कर रहे थे उस समय इसी भक्ति और प्रतिमा ने हिन्दुआनी की जड़ कायम रक्खा। जड़ बनी रह गई तो अब इस समय सबी रिफ़ार्मर बनते हैं और गाल फूलाय २ हमें सत्य धर्म सिखा रहे हैं।

हम दास हैं।

हम दास हैं कोई ऐसे वैसे दास नहीं हैं। अपने धर्म में दास हैं। समाज में दास हैं। घरमें दास हैं बाहर भी दास हैं। चाल ढाल में दास हैं; रंग रूप में दास हैं, सब दासों के दास नहा दास, रामदास, लछमण दास, कृष्ण दास, शिव दास, भगवान दास, भिखारी दास, प्रेम दास, धरम दास, 'धोबी के' घर धरम दास हैं बाह्मन पूत' मदारी।

हम अपने मालिकों के आज्ञाकारी विश्वास पात्र दास हैं अविश्रान्त परिश्रम करते हैं। कभी थकने का नाम तक नहीं जानते और जो कुछ उनके खाने पीने भोग बिलास से बचता हैं चूनी चोकर साग पात खा कर मस्त रहते हैं। मालिक का कैसाही कड़ा से कड़ा हुक्म हो बजालाते हैं कभी किसी तरह का चीं चपड़ करना जानते ही नहीं। अफसोस तब भी विद्रोही और अराजक कहे जाते हैं। हां कभी २ बड़ा दुःख पाने पर कुछ हमारे साथी शोर गुल मचाते हैं और समझते हैं हमारा चिल्लाना और रोना गाना उचित है। क्योंकि हमारे प्रभुवरों में भी ऐसे चिल्लाने वाले हैं उनका बड़ा आदर होता है। ऐसे लोग उनमे पूजनीय समझे जाते हैं। तो क्या कारण कि हमलोग चोर डाकुओं की भांत अपराधी कहे जाते हैं? ऐसे मूर्ख ना समझों की मूर्खता और नासमझी पर हमें हंसी आती है और उन्हें समझाना पड़ता है कि मूर्खो तुमसे और उनसे

आकाश पाताल का अन्तर है वे गौर वर्ण हैं तुम कृष्ण, वे वीर हैं तुम कायर, उन्में एका है तुह्मारे में फूट, वे सशस्त्र हैं तुम निःशस्त्र, वे एक जाति तुम अनेक खण्डों में विभक्त हो, उनके सर्वांग में बल है तुम्हारा आधा अंग लकवा का मारा है, वे सब एक साथ के खाने वाले हैं तुम चूल्हा चौका के पीछे हैरान हो, तुम्हें धरम पीसे डालता है वे धरम को पुरज़े २ उड़ा डालने वाले हैं, वे कपड़े और फेशन के नये २ तराश खरास में लगे हैं तुम भद्दे से भद्दे सोने चांदी के ज़ेवरों से लद जाने ही को खूबसूरती माने बैठे हो, उनके लिए समस्त भूगोल हस्तामलक के समान हो रहा है तुम जहां जाओ वहीं से निकाले जाओ, सब ठौर निषेध, कहीं पैठारी नहीं, वे अपने मुल्क और जातिके लिये प्रान देदेने वाले तुम देश और जाति तथा देशानुराग को काली के खप्पर में झोंक अपना ही पेट भरने वाले हो, वे अपने देश के मित्र तुम देश के शत्रु, वे प्रभूओं प्रभु तुम गुलाम दर गुलाम।

अच्छा तो गुलामी से छूटना चाहो तो उनकी नकल के लिये कोशिश करो। उनकी सब बातों की नकल तो बड़ा मुशकिल है तब कुछ तो अपने में लाओ। लो सुनो चुरट मुह में दाब घूमा करो। किसी हिन्दुस्तानी दोस्त को देशी वेष भूषा में देख चिनाया करो। मोटर कार पर चढ़ना सीखो। हमेशा हाथ में छड़ी रक्खो। होटल का पवित्र भोजन किया करो। अलफ्रेड फेशन का बाल कतराये रहो। गुलामी से छुटने का सबसे सहज लटका यह है कि अपनी घर वाली को विलायत भेज दो और वहां ब्रिटिशबार्न सबजक्ट उसके पैदा हो बेप्रयास ही तुम दासता से मुक्त होजाओगे। इतना आज बतलाया इसे ख़ूब मश्क करलोगे तो आगे और बतलावेंगे। एक दास।

सूरत की बेडौल सूरत।

एक दृश्य।

स्थान—रंग भूमि।

अनेक देश भक्तों का एक साथ विनय—

इधर अब कब देखिहौ महाराज।
दीन दयालु कहा तुम करिहौ, बिगड़त जात समाज।
इतै प्लेग उत काल सतावत, मिलत न नेकु अनाज॥
अहो कृपानिधि कित तुम सोये, होहु गरीब नवाज।
कोउ मारत कोउ अधिक सतावत, दीखत सबै कुसाज॥
द्रवहु बेगि नाथ करुणाकर, नातरु गई सब लाज।
जीवन पै इन दुखित प्रजा के, प्रभो करहु कुछ काज॥

उदासीन बेश में भारत का प्रवेश-इन देश भक्तों की दुःख के साथ परमेश्वर से विनय प्रार्थना पर अपना शोक प्रगट करना—

धुन जोगिया तिताला।

हाय कैसे जियैंगे प्यारे, बिनु अब हमारे वारे।
दीन हीन अति छीन दुखित मन, विद्या विभव विसारे॥
गो घृत दूध पालि जिनके तन, सपनेहु दुख न विचारे।
वही हाय अब दूध कौन कह, छांछहु लागि पुकारे॥
रोग शोक तें विकल दुखित हिय, रोअत मोर दुलारे।
कितौ पुकारत सुनत नहीं कोउ, यतन बहुत करि हारे॥
हीन समझ कोउ मारत लातहिं, कोउ कहि नीच पुकारे।
है कोउ धरम बीर जगती में, इन कह देत सहारे॥

दूसरा दृश्य।

स्थान-मंत्रणा मण्डप।

विविध विरुदावली विभूषित माननीय अनेक सर, सी० आई० ई०, राय बहादुर, दीवान बहादुर, खां बहादुर, आदि कांग्रेस के सभासद यथा क्रम कुरसियों पर बैठे हुए हसता हुआ एक वालंटियर का प्रवेश—

जिनके सत्कार के लिये मैं भेजा गया-उन्हें नेशनलिस्ट समझ सत्कार करने से मुंह मोड़ लिया। उनकी सेवकाई और स्वागत वालंटियर न करते हैं न करेंगे। असहाय ठोकर खाते वे भटका किये और भटकेंगे। पता पूछने पर कुछ और का और कह दिया जाता है। अनायास बेचारा तरद्दुद में पड़ जाता है। सवारी का कोई प्रबन्ध उनको होने नहीं पाता। इसी तरह हलाकान हो दूर २ वे भटकाये जाते हैं। पर फिर भी कहेंगे। वे बड़े वीर और धीर हैं। उनके ढंग से ज्ञात होता है वे बड़े गंभीर हैं। सुकुमार और कोमल होने पर भी पांव प्यादे चल पड़ते हैं। धीरज और साहस के साथ विपद् पार कर लेते हैं। कुछ वालंटियर भी छिप २ कर मदद देते हैं। मैंने सुना है सहानुभूति नेशनलिस्ट भी उनके साथ बहुत रखते हैं।

एक सभासद् का क्रोध से-निकाल दो ऐसे वालंटियर को जो हम लोगों की खिलाफ मरज़ी कर गुज़रा हो-

एक दूसरे वालंटियर का प्रवेश।

वालंटियर-महानुभाव मैं भी संवाद आप के पास लाया हूं। कोशिश करके जब मैं हार गया तब आपसे निवेदन को यहां आया हूं। जहां रहते हैं नेशनलिस्ट वहां कई विघ्न मैंने डालना चाहा। घर से निकाल आपका आदेश निवाहा चाहा। पर क्या करूं दैव ने इस काम में कृतकार्य न करना चाहा। गो अमित कष्ट प्रतिनिधियों को बहु बार दिया। दगा कितनो [illegible] दी पर दूसरा ही उपाय उन्होंने जल्द सोच लिया। छेड़ छाड़ करने के लिये दो चार मित्रों से भी कह रक्खा है। कलह बढ़ाने का प्रयत्न बहुत मैंने कर रक्खा है। हैं वे दूरदर्शी सहनशील नीति परायण ऐसे कि बात मेरी एक न लगी प्रयत्न सब विफल गया। हाय प्रभो! करूं मैं अब कैसे।

कांग्रेस का एक सभासद-ईश्वरेच्छा भी उन्हीं के अनुकूल है होनहार कैसा प्रबल है कि बिना हुये नही रहता लाचारी है।

तीसरे वालंटियर का प्रवेश–गया था मैं बाला जी घाट जहां तिलक लेक्चर देता था। उस सिंह की दहाड़ सुन २ कर दिल दहल उठता था। उन सबों के दृढ़ प्रतिज्ञ देख चित्तचलायमान होता था। जोश नेशनलिस्टों में पाय अचंभित मैं खड़ा था। ढंग उनके आर्जव का लख विस्मित मैं बड़ा था। जो कुछ वे कहते थे उसमें बुराई कोई नहीं प्रतीत होती थी। विधि संगत Constitutional विरोध पर प्रतिज्ञा मनोनीत होती थी। स्वदेशी और स्वराज्य के उमंग में फूले नहीं समाते थे। कुछ सूरतें सूरत की भी उस समारोह में संमिलित देख पड़ीं। स्वागत सत्कार में उनको भी मीन मेख न थी।

सब लोगों का अचरज में आय एक दूसरे का मुह देखना।

एक सभासद्–कोई घबड़ाने की बात नहीं है। शहर के गुंडों को बुलाय ऐसा प्रबंध करूंगा कि उनकी कोई बात पूरी न होने पावैगी। लाजपत आता है उसका भी तो स्वागत करना है। वह भी तो नेशनलिष्ट है पर क्या किया जाय लाचारी है। स्वागत सत्कार नहीं करते तो हम सूरत वालों की नाक जाती है।

दूसरा सभासद्–तो इसमें खेद करने की कौन सी बात है। हमें भी तो देशभक्तों में अपना नाम उजागर करना है। कितने काम ऐसे हैं कि दिखाने को किये जाते हैं।

तीसरा सभासद्–लाजपत सुजन और देशभक्त है पर विपक्षियों के दल का है इससे उसके सत्कार में तो मैं सहमत नहीं हूं।

चौथा सभासद्–विगड़ता ही क्या है सत्कार के जाल में डाल उसे भी माडरेट बना लेंगे। पर यह स्वागत कलकत्ते में पारसाल दादाभाई के स्वागत से कम न होने पावे। देख लेंगे मेरे चंगुल से बचा कैसे निकलने पाते। कृतज्ञता के बोझ से उन्हें लाद देंगे क्या आप भी फरमाते।

पांचवां सभासद्–उसे माडरेट बनाना तो टेढ़ी खीर है पर स्वागत तो करना ही है खैर। तो चलो अब उसी की तैयारी में लगें (सब गये)।

तीसरा दृश्य

स्थान—सूरत में रेलवेस्टेशन ।

पानवाला सिगरेट वाला खोनचेवाले का इधर उधर घूमना । वालेंटियरों का डेलीगेटों को गाड़ी से उतारना । लाला लाजपत को हार पहिनाना और जयध्वनि । डेलीगेटों की आपस में बात चीत । मित्रो लाला लाजपत राय मानो भारत के लाल हैं । बड़े से बड़े राजाओं में नही पाल हैं ! भारत के सुयोग्य सुपुत्र । ईश्वर द्वारा भारत की भलाई करने को हुये नियुक्त ।

एक डेलीगेट—आहा ! भारत के तिलक । भारत के लाल और भारत के महापालक पाल । मेरे लिये मानो येही त्रिदेव हैं । बाल लाल अरु पालको जो सुमिरै दिन रैन । सुफल होय मन कमना कटै काल सुखचैन

सबमिल—धन्य आर्य कुलबीर । लाजपत नरवर श्रीयुत ।
धन्य बन्धु हित करन । धन्य भारत सुयोग्य सुत । इत्यादि *

लाजपत—यदि मै २१ बारजन्म लै देश सेवा मेरत रहूं । देश के लिये क्लेश सूली का सहूं । तौभी इतना आदर योग मै कदापि न होता जितना, आपने मेरे प्रतिप्रगट किया । देश मे जागृति मुझे अवश्य प्रतीत होती है । अच्छे आसार भारत के और भलाई सब लखती है । विनय मेरा यही है कृपाकर उसपर भी ध्यान दीजिये । ईश्वर सबका रक्षक है वह जो कुछ करै उसे शिरोधार्य कीजिये । वह जो करता है उसी में हमारी भलाई है । बुरा जिसको आप कहते हो भलाई उसी मे हमारी है । उन्नत चित हो यार परसपर प्रीति बढ़ाओ । कपट प्रेम तजि सहज सबै व्यौहार चलाओ । रखिये दृढ़ बिश्वास धर्म जित है जय उतही ॥ भारत का उद्धार होयगा निश्चय तबही ।

जयध्वनि

॥ सबो का एक साथ मिलकर गाना ॥

बोलो भैया लेकर तान । हिन्दू हिन्दी हिन्दुस्तान ॥

---

* प्रदीप के एक पिछले अंक में यह छप चुका है ।

उठो सबेरा हुआ जवान। पूरब उयो सूर्य भगवान॥
दशा देश की लखो सुजान। अब तुम मानो भया बिहान॥
अपने करतब को पहचान। चित्त लगाकर अरजो ज्ञान॥
गहो एकता बनो महान। फूट रांड का तोड़ो मान॥
बोलो भैया करि सन्मान। हिन्दू हिन्दी हिन्दुस्तान॥

गाते हुये सबों का प्रस्थान

पटाक्षेप प्रथम अंक—कांग्रेस का एक मर्मज्ञ।

गायत्री का कुत्सित आलाप।

इन दिनों यहां आर्य समाज की एक स्त्री आई है नाम उसका लोगों ने गायत्री रख दिया है किन्तु जैसा उसमें कुत्सित आलाप पाया गया उससे तो यही कहने का मन होता है कि यह कैसी गायत्री है। गायत्री इस नाम की ज़रा भी सार्थकता इसमें न देखी गई। यह अपने को बड़ी विदुषी प्रसिद्ध किये है लेक्चर देने के समय चिल्लाती और कूदती तो बहुत है पर सुपठिता नहीं मालूम होती। ब्राह्मणों को बेतरह गाली देना ही इसके लेक्चर का सारांश है। पहले तो यह ज़रूर कहा जायगा कि आर्य समाजियों की यह बड़ी भूल है जो इस तरह का आग्रह Bigotry उनमें आलगा है। जैसा अनेक देश की भलाई का उमदा काम ये कर रहे हैं उसमें यह एक बड़ा कलंक और धब्बा है। इससे देश की उन्नति के अपने सिद्धान्त से वे दूर हट जाते हैं। अस्तु इन ब्राह्मणों को उत्तेजित करने को उन्हे शरम दिलाओ इसमें हम कोई हर्ज़ नहीं समझते और इनकी फ़ज़ीहत भी की जा पर उतनाही कि जितना बिगाड़ इनमें हो गया है। न कि उसे Exaggeration अत्युक्ति के साथ प्रगट करो और जो बात ब्राह्मणों में कभी देखी सुनी नहीं गई उसकी मिथ्या कल्पना करो। जैसा इसने कहा अमीरों के यहां व्याह शादियों में जो रंडियां बुलाई जाती हैं उनकी खिदमतगारी ब्राह्मणों को सौंपी जाती हैं। हम ने तो ऐसा कहीं नहीं देखा दूसरे यह कि कितना ही.

ज़माना बिगड़ गया है और सामयिक सभ्यता चमक रही है पर हिन्दू कुल का हो कर कोई अमीर चाहे वह कैसा ही अविवेकी हो गया हो हां वह अमीर आर्य समाजी हो तो लाचारी है । यदि हिन्दू वह होगा तो कभी [illegible] गवारा न करेगा कि ब्राह्मण रंडी का खिदमतगार बने। इन समाजियों में भी बहुत से श्रेष्ट और पूजनीय पुरुष हैं हम जानते हैं दो एक उन निकृष्ट प्रकृति वालों को नामोद्घाटन से क्या प्रयोजन जो नितान्त ब्रह्मद्रोही हैं । ऐसे अधम प्रकृति वाले निश्चय समझे रहें । जल्दी ऐसा समय आने वाला है कि ऐसे ब्रह्म द्रोहियों के सिर पर लात रख ये ब्राह्मण अपना मान यथा स्थित कायम रक्खेंगे और ये मोची के मोची बने रह जांयगे ।

प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ।

पंच तत्व निर्मित जो कुछ है सब स्वभाव के अनुसार चलते हैं जैसा जल का स्वभाव नीचे को बहने का है वह अपना स्वभाव छोड़ ऊपर को कभी न जायगा इसीसे आगे कहता है "निग्रहः किं करिष्यति" उसके लिये रोक क्या कर सकता है ? सच है "नाहं निन्दे नच स्तौमि स्वभाव-विषमं जनम्"• स्वभाव मनुष्यों का एक सा नहीं होता तब हम न किसी की निन्दा करते हैं न प्रशंसा । सच है हमें क्या अधिकार कि हम चोर को चोर कहैं न हमारे कहने से उसका चोरी करने का स्वभाव जाता रहेगा । ब्राम्हण चाहे पंखा कुली हो गया हो पर अपनी जाति का अभिमान उसमें अभी जैसा का तैसा टटका बना है और यह बहुत ही शुभ लक्षण है । ब्राम्हणत्व का जोश कायम है तो क्या अचरज कि उसी पंखा कुली के सन्तान में कोई हाईकोर्ट के जज निकल आवें । हम कई एक उदाहरण दे सकते हैं कि पिता उनका प्यून या पुत्र बेरिस्टर और दूसरे बड़े उच्चपद पर पहुंच गया । सच तो यों है कि सबों ने अपनी २ जाति का काम छोड़ दिया ब्राह्मण अब भी अपने गुण कर्म के अनुसार चल रहे हैं । पढ़ें चाहे नहीं पर शिखा सूत्र नहीं त्यागा खेती करते होंगे पर अपने हाड़ की श्रेष्टता रखने को संस्कार ब्राह्मण का किसी न किसी ढंग पर अवश्य करावेंगे । खाने पीने में विचार भी ज़रूर रक्खेंगे औरों

के समान सर्वभक्षी हुताशः नहीं हो गये। आल्हाराम की तो इन आर्य समाजियों ने इतनी फ़ज़ीहत किया अब इन पर ब्राह्मण जो मुक़द्दमा दायर करें तो क्या उसकी सुनाई सर्कार में न हो? हम आशा करते हैं हमारे आर्य्य भाई अब चेत जांयगे और ऐसी बेहूदा की बकवाद से निरस्त होंगे। अब यह समय आपस में अनबन पैदा करने का नहीं है आगे जैसी उनकी इच्छा।

सच्चा प्रेम।

(यह लेख नागरी प्रवर्धिनी सभा में पढ़ा जा चुका है)

प्यारे प्रेमी पाठको!

जिस प्रेम पयोनिधि का पार पाने में प्रवीण पंडित भी असमर्थ रहे हैं और जिस प्रेम की महान् महिमा की अकथ कहानी शेषनाग की सहस्र जिह्वाओं से भी नहीं गाई जा सकी है उसी प्रेम के विषय में मुझ अल्पमति व्यक्ति का प्रयत्न चन्द्रमा को छूने के लिये बौने के प्रयत्न के समान है। इस प्रेम का संचार स्वयं हृदय के समुद्र में तरंगे उत्पन्न कर देता है और इस का प्रभाव मुर्दे में भी जान डाल देता है। और और विषयों के सम्बन्ध में लोग अपनी अनभिज्ञता प्रगट कर सकते हैं सम्भव है उनकी ज्ञान भूमि में उन विषयों के अंकुर न जमें हों परन्तु प्रेम के बारे में ऐसा करना सर्वथा अनुचित और निष्फल है। क्या प्रेम रस के सामने कभी रुखाई ठहर सकती है? वह कौन सी मरु भूमि है जिसे प्रेम का पयोनिधि उर्वरा न कर सके? और वह कौन सा पाषाण हृदय है जिसमें प्रेम का अंकुर न जम सके? परन्तु तौभी किसी व्यक्ति के हृदय में प्रेम का प्रगाढ़ उद्गार होना एक बात है और उसके ऊपर लेख लिखना तथा लम्बी चौड़ी स्पीचें देना दूसरी बात है। दोनों में परस्पर विरोध है। लेखनी की तेज़ी और वाक्चापल के तारागण तभी तक टिमटिमाते दीख पड़ते हैं जब तक हृदय के आकाश में प्रेम के

सूर्य्य का उदय नहीं होता। ज्योंहीं मनुष्य के ऊपर प्रेम का पूरा अधिकार जम जाता है त्योंहीं उसका कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है और लेखनी में शिथिलता आजाती है। मतलब यह है कि प्रेम का विषय जिह्वा और लेखनी से परे है। यह विषय कहने सुनने का नहीं है प्रत्युत स्वयं अनुभव करने का है। यह विषय बड़े २ विद्वानों और शब्द शास्त्र पारंगतों का नहीं है प्रत्युत उन पागलों का है जिन्हें प्रेम के नशे में अपने तन मन की भी सुध नहीं रही। यह विषय शृङ्गार रस पंडिता मंडन मिश्र की स्त्री का है न कि वेदान्त वेत्ता और निरन्तर वैराग्य में पगे शंकराचार्य्य जी का। उसकी अधिष्ठात्री वाग्देवता नहीं हैं प्रत्युत हृदयेश हैं जिनकी मौनमयी परन्तु प्रेम से संक्रान्तमूर्ति के रोम रोम में प्रेम की झलक और प्रेम से संचालित "अमी हलाहल रस भरे श्वेत श्याम रतनार, नेत्रों का रंग ढंग ही जो कुछ कहता है उसे सहस्र वाग्देवता भी मिल कर प्रगट नहीं कर सकतीं और न किसी पुस्तक अथवा पुस्तकालय ही में समा सकता है। प्रेम को पहचानने की उत्कण्ठा रखने वालों को उन प्रेम प्रमोदिनी समितियों का आश्रय लेना चाहिये जहां प्रत्येक सच्चे प्रेमी के मुख मंडल पर बड़े बड़े मोटे अक्षरों में परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से पढ़े जाने के योग्य प्रेम की व्याख्या अंकित हो रही हो। हमारे इन लेखों का उद्देश्य केवल इतना दिखलाना है कि प्रेम एक अद्भुत वस्तु है। जैसा किसी भोज्य पदार्थ का मीठा अथवा तीता होना तब तक नहीं मालूम पड़ता जब तक जीभ उसका स्वयं स्वाद न चख ले उसी प्रकार प्रेम क्या वस्तु है? इसमें क्या २ अद्भुत गुण और शक्तियां भरी हुई हैं? केवल वेही मनुष्य जान सकते हैं जिन्होंने प्रेम-सागर में स्वयं डुबकी लगाई है। जिस प्रकार एक मकान का अंधकार अथवा प्रकाश युक्त होना उस मकान ही पर निर्भर नहीं है बल्कि उस मकान में रहने वाले मनुष्य के दीपक जलाने के आधीन है और जिस प्रकार भोजन का स्वादिष्ट अथवा फीका होना इस बात पर निर्भर है कि उसमें आवश्यकता के अनुसार लवण मौजूद हो। उसी प्रकार इस असार संसार का भी सारवान् होना इस बात पर निर्भर है कि इसके विस्तीर्ण

मकान में स्नेह का दीपक जले और इसकी प्रत्येक वस्तु में प्रेम का लवण मौजूद हो। एक कवि के वाक्य हैं—मुहब्बत मुसब्बब मुहब्बत सबब। मुहब्बत से होते हैं कारे अजब॥ मुहब्बत ही उस कारख़ाने में है। मुहब्बत से सब कुछ ज़माने में है॥

ये वाक्य अक्षर २ सत्य हैं। क्योंकि यदि पिता और पुत्र स्त्री और पुरुष, भाई और भाई में परस्पर प्रेम न होता तो क्या संसार का कोई भी कार्य्य चल सकता था? यदि परमाणुओं में परस्पर संलग्न हो जाने की शक्ति न होती तो क्या सृष्टि भर में हम को किसी पदार्थ की स्थिति दिखाई पड़ सकती थी? यदि प्रकृति के पांचों तत्वों में एक दूसरे से सम्बन्ध न होता तो क्या हमको 'धर्मार्थकमभोक्षाणां शरीरं मूलकारणम्' प्राप्त हो सकता था? यदि मनुष्य और मनुष्य के बीच प्रेम का बन्धन न होता तो क्या कोई भी एक दूसरे के काम में आसकता था? जन्म-भूमि का प्रेम ही है जो हम लोग इस समय स्वराज के उत्सुक हैं। कहां तक कहें प्रेम तत्व सृष्टि की स्थिति तथा मनुष्य के जीवन के लिये परमावश्यकीय है। बिना प्रेम के अनुकूल भी प्रतिकूल हो जाता है और प्रेम की शक्ति प्रतिकूल को भी अनुकूल बना देती है। प्रेम में पगा हलाहल भी मधुर लगने लगता है और प्रेम रहित अमृत में भी कटुता आ जाती है।

अन्य मुखे दुर्वादो यः प्रियवदने स एव परिहासः।
इतरेन्धनजन्मा यो धूमः स एवागुरुसम्भवो धूपः॥

अर्थात् प्रेम भरी गालियां फूलों की वृष्टि के समान मालूम होती हैं और प्रेम शून्य मीठे वाक्य भी नायक के तीरों की तरह मर्म को छेदते हैं। बिना प्रेम दुर्योधन की मेवा मन को न भाई और प्रेम से दिये हुए विदुर के साग और भीलनी के जूठे बेरों से भगवान् रीझ गये। जिस संग मूसा की मूर्ति द्वेषी को काला पत्थर ही पत्थर दिखाई पड़ता है उसी मूर्ति में प्रेमी को अपने सेव्य के स्वरूप का अनुभव होता है। एक नीग्रो श्यामवर्ण की एक नीग्रो स्त्री पर जितना अपना तन, मन,

धन न्यौछावर किये रहता है उतना कदाचित् काकेशश की एक गौरांगी पर स्वप्न में भी न करेगा। सुआ की चोंच जैसी नासिका वाली और कम्बु कलग्रीवा वाली युवतियों पर प्राणार्पण करने वाले आश्चर्य्य की दृष्टि से देखेंगे कि चीनियों और जापानियों को चपटी नाक वाली ललनाएं इतनी अधिक प्यारी हैं कि वे अन्य नितम्बिनियों की ओर आंख उठा कर भी नहीं देखते।

सरांश यह कि जिस वस्तु को एक मनुष्य निपट सौन्दर्य्य हीन समझ त्याग देता है वही वस्तु एक दूसरे मनुष्य के जीवन का आधार है। यह सब प्रेम ही की विलक्षणता है।

भिन्न रुचि हिंलोकः जिस प्रेम के कारण मनुष्य एक पदार्थ में महान् सुखका अनुभव करता है उसी में दूसरा असीम दुःख। जिस हिमांशु की कौमुदी में प्रेमालीढ़ हृदयों को एक समय सुधा की वृष्टि का सुख प्राप्त होता है वही मृगलांछन विरह संतप्त को प्रचण्ड मार्तण्ड सदृश हो जाता है। जिस स्थान में एक समय इन्द्रभवन का भी सुख तुच्छ मालूम पड़ता है वही स्थान दूसरे काल में निर्जन बन के समान भयंकर प्रतीत होने लगता है।

जो निशा प्रेमवद्ध दम्पति के लिये निमेष मात्र में व्यतीत हो जाती है वही निशा चक्रबाक युगल को काल रात्रि सा भयंकर रूप धारण कर लेती है। यह प्रेमियों ही की अवस्था में देखा जाता है कि नवजात पादपों की कोमल कलियां भी कठोर कण्टक में परिणत हो जाती हैं और शीतल, मन्द, और सुगन्धित समीर भी सर्प की विषैली स्वांस के समान दुखदाई जान पड़ती है। मेघ उनके लिये गरम तेल बरसाते हैं और त्रिभुवन तम नाशक मरीचिमाली भगवान् सूर्य्य के प्रकाश से परिपूर्ण सम्पूर्ण भूमण्डल उनको कज्जल से कलुषित कारागार के समान भासने लगता है। इस प्रेम की अपार लीला को वही प्रेमी भली भांति समझ सकता है जिसने सच्चे प्रेम में अपना सिर दिया, है और उसकी संयोग तथा वियोग दोनों अवस्थाओं का अनुभव किया है। जिनके हृदय में प्रेम का तत्त्व छू तक नहीं

गया अथवा जो झूठे और बनावटी प्रेम से अपना काम चला रहे हैं उनके लिये इसका मर्म समझना असम्भव है।

संसार में अनेक पदार्थ असली और नकली दो तरह के होते हैं उसी प्रकार प्रेम के भी दो भेद हैं। ऐसे उदाहरण कम नहीं मिलते कि एक मनुष्य दूसरे को पहिले तो क्षति पहुंचाता है फिर उसी के पास आकर आंसू बहाने लगता है और इस प्रकार अपनी हार्दिक सहानुभूति दिखाता हैं। ऐसे जीव भी कम नहीं हैं जो राजा पुरूरवा की तरह उर्वशी में तो प्रेमालीढ़ हैं और रहस्य भेद के भय से अपनी रानी के प्रति अत्यन्त प्रेम प्रगट करते हैं। संसार में उन चाटुपर और ख़ुशामदी मनुष्यों की भी कमी नहीं है जो अपनी किसी अर्थ सिद्धि के लिये दासानुदास बने रहते हैं और जिनका रात दिन उनही का गान गाने में बीतता है। ये सब बनावटी प्रेम के लक्षण हैं। हमारी समझ में तो उन लोगों का प्रेम भी असली प्रेम नहीं है जो सौन्दर्य अथवा काम के वशीभूत हो किसी के प्रेमी बन बैठे हैं। प्रति क्षण जिनकी आंखों के सामने वही सूरत खड़ी रहती है। जिसके बिरह की ज्वाला हरदम उन्हें भस्मसात् करने को उद्यत रहती है और जिसके समागम के लिये प्राण इस शरीर से पल पल पर निकल कर भागने को तैयार रहते हैं। यह प्रेम अवश्य है परन्तु नैमित्तिक है जिसका चिरस्थायी होना संदेह युक्त है। संभव है उस नाशवान् निमित्त के न रहने पर उसका आश्रयीभूत प्रेम भी न रहे।

सच्चा प्रेम इससे भिन्न होता है। वह स्वाभाविक है किसी के निमित्त से नहीं। और यदि कोई निमित्त भी हुआ तो ऐसा नहीं कि जिसकी चांदनी चार दिन अपनी चटक दिखाकर फिर अन्धकार अथवा जिसके बहार के दिन ख़िज़ां की तरह कोई दम में काफ़ूर हो जांय। सच्चे प्रेम का निमित्त आन्तरिक होता है वाह्य नहीं, सच्चे प्रेम के शैदा सीरत (भीतरी गुण) के गुलाम होते हैं न कि सूरत के। जिस सूरत की ओर झुक कर बड़े बड़े मेधावी और कार्य्य कुशल पुरुषों का वर्षों का परिश्रम निष्फल हो गया और जिस ओर बड़े २ योग का

दम भरने वालों को दम भर में फंदे में फांस लिया उस सूरत को दूर ही से नमस्कार है।

इसके गोरे और चमकते हुये आडम्बर की चमक दमक चाहो कितना ही मन को क्यों न लुभाती हो सच्चे प्रेम की झलक का लेश वहां नहीं है। तनिक सी लालिमा लिये हुये आर्द्र और पतले होटों के पंकज वर्ण से ढंपी नन्हीं नन्हीं दंतियों की चित्ताकर्षक आभा और मन्द मुसक्रान कितना ही मन को मोहित क्यों न करती हों किन्तु उनके बाहिरी चमत्कार को सच्चे प्रेम का प्रकाश समझ लेना उस निर्बुद्धि मृग के भ्रम से किसी अंश में कम नहीं है जो एक बालुकामय भूमि को जल मय भील समझ इधर उधर भागता फिरता है। सच्चे प्रेम की खोंज करते हुये हम को उसके प्रतिनिधि स्वरूप महावंचक मोह से सदैव होशियार रहना चाहिये। इसकी उत्पत्ति अविद्या से है और इसमें अकसर तो आत्म सान्त्ववन का और बहुत सी जगहों में मन बहलाव ही का स्वार्थ मिला रहता है। एक निःस्वार्थ भी मोह होता है जो अनेक मनुष्यों में और प्रायः समस्त पशुओं में अपने बच्चों की ओर देखने में आता है। यह स्वाभाविक परन्तु क्षणिक होता है। पक्षी अपने अंडों को बड़ा कष्ट उठा कर सेता है और बच्चों के लालन पालन में प्राणों तक को कुछ नहीं समझता परन्तु जब वे बच्चे अपनी रक्षा अपनेआप [illegible] हो जाते हैं तब वह उन्हे बिलकुल भूल जाता है। एक गाय का [illegible] बच्चे के प्रति सम्पूर्ण प्यार और दुलार दूसरे बच्चे के उत्पन्न होने [illegible] तक रहा है। यह सब मोह जाल है जिससे बचे रहने को ऋषियों मुनियों ने श्रुतियों और स्मृतियों में मनुष्य का मुख्य कर्तव्य बतलाया है। इसमें और सच्चे प्रेम में ज़मीन आसमान का अंतर है। मोह संसार का एक बंधन है परन्तु प्रेम संसार से मुक्त करने का एक मुख्य साधन है। मोह का अंधकार ज्ञान चक्षु को विफल बना देता है परन्तु प्रेम का प्रकाश अदृश्य और अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थों को भी दृष्टिगोचर करा देता है।

मोह का उद्गार केवल दुख का देने वाला होता है परन्तु प्रेम का संचार महान् आनन्द का कारण है ऐसे ही प्रेम के पियाले को पी मनुष्य अपने आप को बिल्कुल भूल जाता है। इस सच्चे प्रेम की प्राप्ति सुगम नहीं है। कठिन से कठिन पदार्थ भी इसी के द्वारा प्राप्य हैं। एक हृदय की बात को बिना किसी बाह्य सम्बन्ध के दूसरे हृदय में पहुंचाने वाली बिना तार की तारबर्क़ी यही है और ज्यों ज्यों दूर सिधारिये त्यों त्यों लांबी होने वाली और दृढ़ता पकड़ने वाली अद्भुत डोरी इसी की है। यह सच्चे प्रेम ही का रोग है जिसे धन्वन्तरि जी भी दूर नहीं कर सकते और यह सच्चे प्रेम ही का कारण है कि एक विरहिणी नायिका झुंझला कर कहती हैः–

जाति मरी बिछुरत घरी जल संकरी की रीति।
छिन छिन होत खरी खरी अरी जरी वह प्रीति॥

जिस प्रेम की प्रबलता परोक्ष में कम हो जाय वह सच्चा प्रेम नहीं है। सच्चे प्रेम की शिक्षा ऐसी प्रेमपगी नायिका से लेनी चाहिये जो अपने नायक के वियोग में कहती हैः–

बिछुरे पिय के जग सूनो भयो अब का कहिये केहि लेखिये का।
सुख छांड़ि के संगम को तुम्हरे अरु तुच्छन को अवरेखिये का॥
हरिचन्द जू हीरनु के व्यवहारन कांचन को ले के परेखिये का।
जिन आंखन आश्रयीभू बसो उन आंखन ते अब देखिये का॥

सच्चे प्रेम में कभी वियोग होता ही नहीं। इस लिये कि वियोग बहुधा स्थूल शरीर का होता है प्रेम का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर है जो एक बार दूसरे में लय हो फिर अलग होना जानता ही नहीं। प्रेमी के हृदय का बन्दी गृह भी इतना मज़बूत होता है कि उससे निकल कर भागना असम्भव है। भगवान् के हांथ छुड़ाकर भागने पर सूरदास जी यह दोहा पढ़ते हैंः–

हांथ छुड़ाये जात हो निबल जानि के मोहि।
हिय भीतर ते जाउ भजि तब मैं जानूं तोहि॥

प्रेम की डोरी से जकड़ा हुआ हृदय का बंदी गृह ईश्वर ने प्रत्येक प्रेमी को दिया है। पुष्पवाटिका से जाते हुये राम को सीता ने हृदय में रख कर पलकों के कपाट दे लिये थे और इसी किले में शकुन्तला ने दुष्यन्त को बन्द कर लिया था। यही बल है जिसके भरोसे पर एक प्रेमी प्रेम के रणक्षेत्र में निर्भयता के साथ आ कूदता है और अपने प्रतिपक्षी को पकड़ने का साहस करता है। यही बल है जो अभीष्ट प्राप्ति पर्यन्त बड़े २ विघ्नों और कष्टों में भी आशा को नहीं टूटने देता।

सच्चे प्रेम की आकर्षण शक्ति समस्त शक्तियों में प्रबल शक्ति है। ऐसा लोहे अथवा फ़ौलाद का हृदय होना असंभव है जिसे प्रेम का चुम्बक अपनी ओर न खींच ले।

यह बात केवल लौकिक विषयों ही में सत्य नहीं है वरन पारलौकिक बातों में भी ठीक है। ईश्वर प्राप्ति के लिये जो भक्ति मार्ग का महत्व दिखलाया है वह किसी से छिपा नहीं है, वृहन्नारदीय पुराण में लिखा है:—

यथा समस्त लोकानां जीवनं सलिलं स्मृतम्
तथा समस्त सिद्धीनां जीवनं भक्तिरिष्यते।

जिस प्रकार सब लोगों को पानी जीवन का सहारा है उसी प्रकार सम्पूर्ण सिद्धियों के लिये भक्ति परमावश्यकीय है। एक स्थान पर यहां तक कहा है।

अश्वमेध सहस्राणां सहस्रं यः करोति वै।
न तत्फलमवाप्नोति मद्भक्तैर्यदवाप्यते॥

अर्थात् लाखों अश्वमेध यज्ञों से भी उतना बड़ा फल प्राप्त नहीं होता जो भक्ति से मिलता है।

यह भक्ति सच्चे प्रेम ही का नामान्तर है। इसी की नौका में बैठ अनेक भक्तों ने इस संसार के अपार समुद्र को पार कर लिया। इसी के द्वारा अधमाधम म्लेच्छ जाति वाले भी सहज ही में उस परंपद को पा गये जिसकी प्राप्ति में ज्ञान और कर्मयोग का मार्ग अवलम्ब करने

वाले अनेक कठिन साधनों के द्वारा भी सफल नहीं हुये। इसी के सहारे बहुत से गोप और गोपियां खेलते कूदते और संसार के समस्त सुखों का उपयोग करते हुये भी श्रीकृष्ण भगवान् के चरणारविन्द तक पहुंच गये। जिसकी प्राप्ति के लिये अच्छे २ संसार के त्यागी और वैरागी अवतक टक्करें खाते फिरते हैं। गोप और गोपियों की भगवान् के प्रति अनन्य भक्ति अकथनीय थी। वे उन्हीं को 'त्वमेवसर्वं मम देव देव' समझते थे, उन्हीं के लिये उनका खाना, पीना, नाचना, गाना और रास-विहार सब कुछ होता था। उन्हीं के लिये उनके प्राण तक न्यौछावर थे। यह केवल सच्चे प्रेम ही की लीला है जिसको बहुत से मूर्ख बिना समझे बूझे कृष्ण भगवान् को कामी होने का दोष लगाते हैं। इस सच्चे प्रेम के समझने के लिये बड़ी बुद्धि और सद्विचार की आवश्यकता है वे मलिन हृदय इसे कदापि नहीं समझ सकते जो अपनी संकीर्ण मति में काम से भिन्न प्रेम का किञ्चित् अनुमान ही नहीं कर सक्ते। जिन्हों ने इसे समझा है और इसके परमतत्व को पहिचाना है वे, दोष लगाना तो अलग रहा, स्वयं इसी में प्रवृत्त और उसी के रंग में मस्त हो जाते हैं। सच्चा प्रेम एक योग का साधन है। योग का उद्देश्य ईश्वर से मिलना है। चित्त की वृत्ति का निरोध सच्चे प्रेम के द्वारा ही साध्य है। तो सिद्ध हुआ कि सच्चा प्रेम लौकिक अभीष्टों ही को नहीं प्रत्युत पारलौकिक पद भी प्राप्त कराने के लिये उपकारी है। हम सबों का कर्तव्य है कि इसके महत्व को पहचानें और इस अद्वितीय धन के उपार्जन का उद्योग करें॥

इतिशम् मिश्रीलाल

मिस्टर केयर हार्डी की जांच।

नीचे का लेख जनवरी १९०८ के माडरनरिव्यू से अनुवादित किया गया है। जिसमें यहां के दिहातों की सच्ची हालत दिखाई गई है।

इस लेख का भाषान्तर करने से मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि हम मिस्टर केयर हार्डी की जांच को बड़े लम्बे चौड़े शब्दों में सराहें। क्योंकि बहुधा इस तरह की सराहनाओं से भारत की दिन २ हानि ही होती

गई। मि० केअर हार्डी के समान कितने विदेशी यहां नहीं आये और यहां की दशा देख इतनी सहानुभूति झलकाया कि हम लोगों को यही मालूम हुआ कि बस अब हमारे सब दुख दूर हुये और इस आशा ही आशा में भारत की गर्दन कटती गई पर बाल की रक्षा होती रही। उन बड़े लोगों को भारत की वर्तमान दशा जताने से हमें कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि उन्हें इससे कोई सरोकार नहीं है कि यहां के ग़रीबों को क्या क्लेश है। उनकी चैन से कटती है तो वे समझते हैं देश का देश खुशखुर्रमी की हालत में है।

"उपानद्गूढ़पादस्य सर्वं चर्मावृतेव भूः"।

जो पांव में जूता पहने है वह कांटा गड़ने का दुःख क्या जाने वह यही समझता है कि सम्पूर्ण धरती चमड़े से ढंकी पड़ी है। हमें जताना उन्हें है जो Suffer देश की बुरी दशा के कारण हर तरह का अनन्त दुःख सह रहे हैं। वे अपने देश की दशा पर विचार करें और इसके प्रतीकार के लिये कमर कस उद्यत हों जिसमें आगे को उनकी सन्तान सुख से ज़िन्दगी काट सकें।

हार्डी साहब की यह जांच चौबेपुर की है जो बनारस के ज़िले में एक गांव है और यह गांव बनारस शहर से क़रीब ११ मील पच्छिम तरफ़ है। हार्डी साहब ने जो जांच किया उससे उनको पूरा विश्वास हो गया कि अधिकतर मनुष्यों को दिन भर में एक जून भी भर पेट भोजन नहीं मिलता।

१९०७ के अक्टोबर मास में करीब दोपहर के मिस्टर केयर हार्डी मोटर पर सवार हो शहर बनारस से चले। सड़क के इधर उधर जो गांव पड़ते थे उनको देखते जाते थे बहुत ही थोड़ी दूर जाने के बाद यह प्रत्यक्ष मालूम हुआ कि मि० हार्डी भारतवर्ष में वैसे ही शुद्ध भाव से घूम रहे हैं जैसा कि आपका शुद्ध अन्तःकरण है। शहर से बहुत दूर नहीं गये थे कि बहुत से बाग और वृक्षों के कुंज देख कर आपने पूछा "क्या इस देश के इस हिस्से का यह कोई गांव है?" आपको उत्तर मिला और

आपने अति शीघ्र अनुमान भी कर लिया कि ये शहर के ऐय्याश अमीरों के बाग़ हैं जो अकसर नगर के बाहिरी ओर होते हैं। ज्यों ही यहां से आगे बढ़े एक दूसरे तरह का दृश्य आपके सामने आया। जोते हुये खेत को देख आपने कहा ज़मीन तो यहां की अति उपजाऊ मालूम होती है। यहां पर यदि पानी और खाद खेत में दी जाय तो अन्न बहुतायत से पैदा हो सकता है लेकिन तुरन्त ही आपको मालूम हो गया कि यदि बरसात का पानी न हो तो कितनी हालतों में बहुत ख़र्च पड़ने से खेत के सिचाने में हानि ही उठानी होती है और गोबर जो खाद की एक प्रधान वस्तु है इस काम के लिये नहीं बच सकता। क्योंकि साधारण तौर से इसकी उपली पथ जाती है जो ईंधन के काम आती है और नगर के पास के गांव वाले इसे बना कर शहर में बेंच आते हैं। जिससे उन्हें बहुत ही थोड़ा लाभ होता है पर किसी न किसी तरह से उन बेचारे ग़रीबों को कुटुम्ब के पालने में वह दाल में निमक समान मदद पहुंचाता है। इस बात का अनुभय केयर हार्डी साहब को मालूम हो गया जब दो पहर बाद आप गांव को देख भाल कर लौट रहे थे। आपने देखा कि बहुत से मर्द और औरतें शहर से लौट रहे हैं उनमें से कुछ तो खाली झौवा या टोकरा लिये हुये थे और दूसरे कुछ थोड़ा बहुत अन्न या दूसरी चीज़ें लिये हुये थे। ये बेचारे ग़रीब देहाती सबेरे उपली का बोझ लेकर शहर में गये थे जिसे वे बेंच उसकी कुछ ज़रूरी चीजें ख़रीद कर इस समय (शाम) को लौट रहे थे। इस तरह से वे सारा दिन इस दुख दाई रोज़गार में व्यतीत करते हैं और जो ऐसे समय में उन की ज़िन्दगी का एक ख़ास ज़रिया है। ये सब बातें जान कर मि० हार्डी के दिल पर बड़ा असर हुआ। कुछ मिनट के बाद मि० हार्डी ने मोटर को आगे बढ़ा एक ज्वार के खेत के पास रोक दिया। आप उतर कर उसी खेत में गये और फ़स्लि की दशा जांचा। यहां रंज पैदा करने वाली हास्यमय एक घटना घटित हुई जो कि प्रजा के गरीबी की कहानी आप ही कहे देती थी। हमने सड़क के पास ही के झोपड़े से पीने के लिए जल मांगा। एक मनुष्य जिसका बदन बिलकुल ठठड़ी सा था हकला बकला आये पेट खलाए टूटा हुआ

कई छेद का लोहे का गगरा पानी से भरा हुआ लिए बाहर आया। उससे एक और गिलास पानी पीने के लिए मांगा गया तो उसने रो कर उत्तर दिया कि उसके पास एक छोटा सा बर्तन और था पर कुछ दिन हुए चोरी होगया और तबसे वह केवल उसी टुटहे कई छेद वाले गगरे ही पर सन्तुष्ट रहता है। पानी रखने के लिए उसके पास सिवाय इस गगरे के और कुछ भी नहीं है उस टुटहे गगरे को भी मि० हार्डी के पास लाने में वह संकोच करता था क्योंकि वह डरता था कि कहीं साहब उस बचे हुये गगरे को भी न छीन लें। मि० हार्डी ने जब यह सुना तो हसे उसको विश्वास दिलाने के लिए कहना पड़ा कि मि० हार्डी इस तरह की बातें कभी भो न करेंगे। तब वह मनुष्य सड़क पर आया जो डरसे कांप रहा था। मि० हार्डी ने ख़ूब नज़र गड़ा कर इसकी तरफ़ देखा जो भारत वर्षीय खेतियर का एक प्रतिरूप था। इसी समय एक चौकीदार आया और बड़ी लम्बी चौड़ी बन्दगी हार्डी साहब को किया।

साहब आगे बढ़े-उन्होंने बहुत से धान के खेत ऐसे देखे जो बिलकुल ही सूखे थे और कितने तो ऐसे थे जिनमें हल तक नहीं चला था क्योंकि उन खेतों में कहीं नमी नाम को भी न थी। आपने समझ लिया कि यह सब लक्षण बड़े भारी दुर्भिक्ष के हैं। कुछ जगहों में आपने देखा कि कितने ही मनुष्य धान के खेत में बड़ी मेहनत से बरसात के अवशिष्ट जल से जो अब तक भी कहीं २ गढ़हों में थोड़ा बहुत शेष रह गया था दोगला चला कर खेत सींच रहे थे। इङ्गलैण्ड के खेत की बातें आपने स्मरण कर पूछा कि इतने बड़े मैदान के यह छोटे २ टुकड़े कर मेड़ से अलग क्यों कर दिये गये। इतना बड़ा खेत एक ही क्यों न रहा। तब यह उनको समझाया गया कि ये खेत जो उनके दृष्टि के सामने हैं किसी एक मनुष्य के अधिकार में नहीं है बल्कि मेड़ से जितने टुकड़े किए गये हैं उतने ही जुदा २ मनुष्यों के खेत हैं। कुछ थोड़ी सी और बातें उन चीज़ों के बारे में हुईं जो आपने रास्ते में देखा था। इतने में चौबेपुर में आकर मोटर ठहराई गई।

रास्ते में बहुत से छोटे २ गांव पड़े थे परन्तु चौबेपुर ऐसे गांव को पहले देखने का विचार किया गया था क्योंकि और गावों से यह एक बड़ा गांव है। इस गांव में दो ग्राम पाठशालायें हैं एक लड़कों की और एक लड़कियों के लिए और एक थाना भी था। इन सब बातों से यह क़सबा माना गया था पर कितनी ही बातों में यह एक गांव का नमूना था। स्थान जहां मोटर ठहराई गई थी ग्राम पाठशाला के ठीक सामने था। मि० हार्डी तुरन्त स्कूल के भीतर गए और अपनी जांच शुरू कर दी। बनारस या दूसरे प्रान्त के थोड़े से स्कूलों में यह एक बड़ा स्कूल है। रजिस्टर में २५० लड़के गिनती में थे। मय इसकी शाखाओं के यह चार मकानों में विभक्त था। उनमें से एक मकान में जिसमें हार्डी साहब पहिले गये निस्सन्देह देखने योग्य था। वे मकान खपड़ैल के थे जिसमें बांस या लकड़ी के खम्भे थे। यह मकान चारो ओर से खुला हुआ था जिसमें चारो तरफ़ से हवा झपेटा मार रहा था। ऐसे जगह चीथड़े दार कपड़ा पहने लड़के लोग इस स्कूल को बर्त रहे थे। वे बेचारे छोटे २ टाट के टुकड़ों पर लम्बी कतार बांध उकरूं बैठे थे। इनकी पंक्तियों के सिरे में एक टेबिल धरा था जिसके पास एक कुर्सी रक्खी थी। मि० हार्डी ने चारो ओर एक बार दृष्टि फेरा और बगल की कुर्सी पर बैठ गये। स्कूल के हेड मास्टर को इन दर्शकों का आगमन जताया गया और ज्योंही ये आए मि० हार्डी उठ खड़े हुए और वह कुर्सी उन्हें दे दिया। हेड मास्टर साहब ठड़े रहना ही उचित समझा क्योंकि वहां सिवाय उस कुर्सी के और कोई चीज़ बैठने को न थी और तब तक ये बराबर खड़े रहे जब तक हार्डी साहब इम्तिहान ले रहे थे।

यहां पर यह कह देना उपयुक्त होगा कि हार्डी साहब की जांच वा देख भाल बहुत ही सच्ची और न्याय के साथ थी। वो जिससे जो कुछ सवाल करते थे और उसका उनको जो कुछ उत्तर मिलता था वह उतने ही शब्दों में हार्डी साहब को समझाया जाता था जितना कि उनके मुख से निकलता था। और यदि कोई सवाल दुभाषिये को करना होता तो पहले वह मि० हार्डी से जता देता था। यदि

कोई सवाल करने पर उसका उत्तर न समझने के कारण ठीक २ न मिलता तो उसी सवाल को दोहरा-तेहरा कर और सवाल का ढंग बदल कर कुछ न कुछ मतलब साहब निकाल ही लेते थे।

लड़कों का नम्बर जो स्कूल में पढ़ रहे थे मालूम कर आपने हेड मास्टर से पूछा कि वे बता सकते हैं कि कितनी आबादी मे से कितने लड़कों को इस स्कूल में शिक्षा दी जाती है? हेड मास्टर ने इसका कुछ जवाब न दिया। उन्होंने तब अपने सवाल को बदला और पूछा कि हेड मास्टर साहब जानते हैं कि कितने गावों के लड़के इस स्कूल में पढ़ने आते हैं? इसका भी उत्तर न मिल सका। उन्होंने फिर अपने सवाल को बदला और पूछा ज़्यादा से ज़्यादा कितने दूर के गावों के लड़के इस स्कूल में आते हैं? दूरी आप को दस माइल के गावों की बताई गई और यह बात तुरन्त हार्डी साहब को मालूम होगई कि इस ज़िले में स्कूल की बड़ी कमी है। उस ज़िले में स्कूल के नम्बर के बारे में कुछ और सवाल करने के बाद जिसका कि कोई ठीक उत्तर न मिला वे दूसरे विषय पर झुके।

उन्होंने पूछा कि क्या गवर्नमेण्ट कुछ अलग टैक्स इन स्कूलों के लिए लेकर इन स्कूलों को चलाती है? और क्या गवर्नमेंट का यह कोई नियम है कि माल गुज़ारी का इतना रुपया इन बातों में व्यय करे? इन स्कूलों के मुताल्लिक किन २ अफ़सरों को सरकार से तनख्वाह मिलती है। और किन २ को बोर्ड से? इसी तरह के बहुत से सवाल किये गये परन्तु उत्तर इन सब सवालों का बहुत ही असन्तोष दायक सा था। मि० हार्डी यह समझ कर कि इन बातों के बारे में उन लोगों से अधिक नहीं मालूम हो सकता और यदि कुछ अधिक जानना हो तो वे उनसे पूछ कर अच्छी तरह से मालूम कर सकते हैं जिनसे इन बातों का तअल्लुका है और जो इन सब बातों को अच्छी तरह से जानते हैं।

मि० हार्डी स्कूल की सामिग्री तथा और दूसरी चीज़ों के जांच की तरफ़ झुके लेकिन इसमें उनका अधिक समय न लगा क्योंकि वे सब

बहुत न थे। कुर्सी यहां थी तो टेबिल वहां बेंच एक जगह तो चारपाई दूसरी जगह-सिवाय इन सबों के वहां फटे हुये टाट के टुकड़े थे जिन पर विद्यार्थी लोग उकड़ूं बैठे थे। मि० हार्डी का ध्यान एक छोटे से कागद की दफ़्ती की तरफ़ खिंचा जो कि दिवाल में टंगा हुआ था।

यह एक फटा हुआ कागद का तख्ता था जिस पर वर्णमाला के अक्षर किसी एक अध्यापक का लिखे हुये थे। मि० हार्डी ने पूछा क्या यह डिसस्ट्रिक्ट बोर्ड से मिला है? लेकिन यह मालूम हुआ कि यह उसी स्कूल के किसी मास्टर ने बना कर टांगा था। उन्होंने फिर पूछा कि स्लेट तख्ती या और दूसरी चीज़ें जो लड़कों के पास है वह उन्हें स्कूल से मिली है या डिसस्ट्रिक्ट बोर्ड से? इसके उत्तर में उनको बताया गया कि लड़कों के पास जो कुछ चीजें हैं वे सब उन्हीं की हैं और वे अपनी निज की अपने साथ लाते हैं। स्कूल की चीज़ों की बहुत अधिक जांच न कर आप शिक्षकों की ओर झुके और हेड मास्टर को सम्बोधन कर बड़ी शिष्टता से पूछा आप बता सकते हैं "आप को कितना मासिक वेतन मिलता है?" इस सवाल से आप को मालूम हुआ कि हेड मास्टर साहब का भाग्य बढ़ते बढ़ते इस समय ३०) रु० पर मोल लेलिया गया है। और इस तरह के स्कूलों के हेडमास्टरों में बहुत ही थोड़े ऐसे हैं जिनकी किस्मत में इतने रुपये भी मिलना बदा है। मि० हार्डी की अनुमति से दूसरा सवाल हेड मास्टर से पूछा गया और स्पष्ट मालूम हो गया कि किस्मतवर हेड मास्टर ३० वर्ष से इस स्कूल में काम कर रहे हैं तब इस तीस रुपये के अतुल सम्पत्ति के पाने के हक़दार हुये हैं। यह हेड मास्टर साहब सफ़ेद बाल वाले बूढ़े आदमी थे और दूसरे मास्टरों की तनख़्वाह इससे भी कम थी। मि० हार्डी को यह जताया गया कि इन बेचारों के माथे पूरा २ कुटुम्ब पड़ा हुआ है और इस वेतन से जो ये लोग पाते हैं अत्यन्त कठिनाई से उनकी आवश्यकताएं पूरी हो सकती हैं। स्कूल की विज़िटर्स बुक में अपनी राय लिखने को यह उन्हें जताया गया कि शिक्षकों को जो वेतन दी जाती है बहुत कम है। उनको इससे अधिक तनख़्वाह देने की ज़रूरत है और यदि वे उत्तेजित किये जायं तो इससे कहीं अधिक अच्छा काम दिखला सकते हैं।

अब मि० हार्डी को Teachers' training Class दिखलाया गया जो उसी स्कूल में लगता था। इसमें चार विद्यार्थी एक टेबिल के चारों ओर बैठे थे और यहीं उनका उस्ताद भी बैठा था। मि० हार्डी ने यहां भी बहुत से सवाल किये जैसे कि सिखलाने का तरीका इसकी कक्षायें-कितने ट्रेनिङ् स्कूल यहां हैं और उनमें कितने दर्जे तथा पढ़ाने वालों का क्या वेतन है इत्यादि।

उत्तर मिला ऐसे ट्रेनिंग स्कूल बहुत थोड़े है यहां ये अध्यापक बेचारे कठिनाई से अपनी ज़िन्दगी खे रहे हैं जो कुछ काम उन को सौंपा गया है उस पर ध्यान दो, तो समय के अनुसार और उनके मेहनत के मुताबिक़ उनको बहुत थोड़ा वेतन मिलता है। मि० हार्डी तब विद्यार्थियों की तरफ झुके लड़के चुप चाप अपनी किताबें और कागद बस्ते में रक्खे ज़मीन पर बैठे थे हार्डी साहिब ने पूछा उनके पास कोई चीज़ लिखने को भी है? साहब को बतलाया गया कि हां है तब उन्होंने अपनी इच्छा इसे देखने को प्रगट किया कि किस तरह से वे लिखते हैं। जो उनको तुरन्त दिखलाया गया। साहब ने देखा कि लड़के कागद को स्लेट पर रख अपने घुटने की टेक दे लिख रहे हैं। सरकिन्डे की क़लम जिससे वे लिख रहे थे साहब के लिये कदाचित् नई बात थी। फिर पूंछा क़लम को कौन काटता या बनाता है। बतलाया गया कि करीबर सब लड़के इस कांम को आपही आप कर लेते हैं। आप ने इस के बनाने का तरीका देखना चाहा और वह तुरन्त उनके सामने बनवाकर दिखा दिया गया। चाकू जिससे कलम काटी गई थी उसे देखकर पूंछा क्या हर एक लड़का अपना एक खास चाकू रखता है परन्तु वहां सिवाय उस चाकू के और कोई भी चाकू दिखलाई न दिया। उन को बताया गया कि सब इसे नहीं रख सकते बल्कि स्कूल भर मे दो ही एक लड़के ऐसे होते हैं जिनके पास एक चाकू रहता है और वह अपने सब साथियों का काम चलाता है। उन्होने तब उसी चाकू को अपने हाथ में लिया और देखा कि चाकू जरमनी का बना उसपर खुदा हुआ है। तदनन्तर साहब की एक निगाह उनकी पुस्तकों पर पड़ी। पुस्तकें हिन्दी मे थीं और पूछा आमतौर पर यह किस दर्जे में पढ़ाई जाती हैं। तब उन्होने

दरयाफ़ किया कि कितने मुसलमान विद्यार्थी इस स्कूल में पढ़ते हैं? वहां केवल एकही मुसलमान विद्यार्थी था। मुसलमान लड़कों का इतना थोड़ा नम्बर इस इस्कूल मे होने का कारण मिस्टर हार्डी को बतलाया गया कि इस गांव में मुसलमान की बस्ती बहुत ही थोड़ी है।

मिस्टर हार्डी ने तब पूछा कि कितने लड़के यहां खेतिहर के हैं और कितने रोज़गारियों के? नम्बर मालूम करने के लिये हांथ उठवाये गये और तब यह देखा गया कि दोनोंही लोगों की अधिक या अच्छी संख्या है। मिस्टर हार्डी ने तब पूछा कि कितने लड़के आगे की शिक्षा के लिये ऊंचे स्कूलों में जा सकते हैं? इस बात के लिये वेही आगे आये जिन का शहर से कुछ ताल्लुक है। उन्होंने तब सवाल किया कि इसके पहिले साल कितने लड़के ऊंचे के स्कूल में गये थे और जब आप को बहुत ही थोड़ा नम्बर मालूम हुआ तो आपने इसका कारण पूछा। एक शिक्षक ने कहा कि आगे की शिक्षा के लिये लड़के ज़रूरी ख़र्च नहीं बचा सकते और इसी से उन की शिक्षा इसी ग्राम पाठशालाही तक रह जाती है। मि० हार्डी ने इसे पहिले से भी अधिक ध्यान देकर सुना। उन्होने पूछा कि कितने लड़के यहां ऐसे हैं जो ऊंची शिक्षा में जा सकते हैं? यदि उन्हे ज़रूरी खर्च दिया जाय। इस सवाल के जवाब में उन को बहुतही अधिक संख्या लड़कों की मिली। दो तिहाई से भी अधिक लड़कों ने एक बड़ीही उत्सुक दृष्टि से उनकी तरफ़ देख अपना २ हांथ उठाया और ऐसा उनको अनुमान होता था कि बस साहब से हम को अब ख़र्च मिलही जायगा। लेकिन इसके अनन्तर यह पूछा गयाकि कितने लड़के ऐसे हैं जो ख़ास अपनेही खर्च से ऊंची शिक्षा मे जा सकते हैं तब तो नम्बर घट कर दो ही रह गया। आपने फिर पूछा कि ऐसे कितने खेतिहर के लड़के हैं जिन की इच्छा तो है पर कोई ज़रिया न होने से ऊंची शिक्षा मे नहीं जा सकते। मि० हार्डी को इङ्गलेण्ड मे यह बतलाया गया था कि हिन्दुस्तान मे खेतिहर के लड़के बिलकुलही शिक्षा से दूर रहा चाहते हैं पर वहां यह उन्हें साफ़ हो गया कि वे सब बातें निरीं झूठ थीं। यहां

पर यह ज़रूर कह देना चाहिये कि मि० हार्डी के जांच करने पर जो कुछ उनके चित्त पर असर होता था और जो कुछ कि उनकी राय होती थी उसे वे बहुतही गुप्त रखते थे और जब कोई बात बहुतही असर दार ठीक सिद्ध हो जाती थी तो उन के कितनाही छिपाने पर भी उनकी राय प्रगटही हो जाती थी ।

मिस्टर हार्डी को अब मालूम हुआ कि ऊंचे दरजे के स्कूल शहर में होते हैं और लड़कों को वहां रहकर शिक्षा पाने में बहुतही ख़र्च बैठता है। अब आपने दूसरा प्रश्न यह किया कि गवर्नमेण्ट या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से इन लड़कों को छात्र-वृत्ति सहायता के ढंग पर किस हिसाब से दी जाती है ? उत्तर मिला कि साल के अन्त में वर्नाक्यूलर मिडिल के नाम से एक परीक्षा होती है उसमें उत्तीर्ण छात्र जो आगे पढ़ना चाहें उनको ३) महीना छात्र-वृत्ति दी जाती है । युक्तप्रदेश में कुल ४८ ज़िले हैं इन ज़िलों में केवल ४० लड़कों को सरकार छात्र-वृत्ति देती है जिसका कुल रुपया १२० सालना हुआ । इगलैंड में इतना एक साधारण अध्यापक को मासिक दिया जाता है । इसे सुन हार्डी साहब अचरज में आये और पूछा इसके सिवाय और भी कुछ मदद गवर्मेंट की ओर से इन स्कूलों को दी जाती है ? उत्तर मिला नहीं । मि० हार्डी से बतलाया गया कि बहुत से विद्यार्थी दूर के गांवों से ८ बजे सबेरे ही से चल पड़ते हैं यहां सांझ तक रहते हैं । खाने के लिये वे अपने साथ भूंजा चबैना लाते हैं । मि० हार्डी ने उसे देखना चाहा तब चबैने की पुटकियां उन्हें दिखाई गईं । बहुतों के पास मैले कपड़ों में बंधी भूंजी मक्काई किसी २ के पास मटर था । साहब ने थोड़ा सा उसमेंसे ले लिया और अपने पाकेट में रख लिया । कुछ लड़कों को उन्होंने अपने पास बुलाया और खूब नज़र गड़ाय के देखा तो वे बहुत ही दुबले थे । उनमें से कितने ऐसे भी थे जिनके पास तन ढापने को भरपूर कपड़े भी न थे । फ़ीस यद्यपि लड़कों से दो ही पैसा ली जाती है तौभी उसके वसूल करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। लड़के जब अपने मुरब्बियों से फ़ीस और किताबों के दाम के लिये दबाते हैं यद्यपि इसका बहुत ही थोड़ा ख़र्च है तौभी कितनों को वह अखर आता है। उस ख़र्च को न दे उन्हें वे स्कूल जाने से रोकते हैं और घर पर उनसे घास छिलाते हैं या ऐसा ही कोई दूसरा काम उनसे कराते हैं और कहते हैं जो पैसा घास का दाम मिलेगा या फ़ीस का जो पैसा

बचेगा सो हमारे नमक के काम अवेगा। फ़ीस के लिये बहुत दबाने से लड़के छोड़ बैठते हैं। फ़ीस वसूल न होने पर मास्टरों की तनख़ाह से काटलिया जाता है जो कम तनखाह पाने वालों को बहुत अखरता है।

स्कूल की जांच समाप्त होने पर मि० हार्डी गांव की ओर २ बातों की जांच करने लगे। पूंछा यहां इस गांव में कोई पुस्तकालय भी है। कहा गया ये बेचारे इतने ग़रीब और मूर्ख हैं कि पुस्तकालय नहीं चला सक्ते। फिर साहब ने पूंछा कि कोई अख़बार भी ये पढ़ते हैं? तब गांव के लोगों में से एक आदमी आगे किया गया उसने कहा मैं अभ्युदय में हार्डी साहब के बारे में पढ़ चुका हूं। हार्डी साहब ग्रामीणों की रुचि समाचार पत्रों की ओर देख प्रसन्न हुये। मि०-हार्डी से कहा गया गांव वाले अख़बारों के चन्दा के लिये रुपया नहीं बचा सक्ते। ये बेचारे अपने को बड़ा भाग्यवान् समझें यदि वे ख़र्च वर्च दे साल में दो रुपया बचा सकें जो ख़ास तौर पर सस्ते से सस्ता समाचार पत्रों का वार्षिक मूल्य है। जो दो रुपये की बचत कर अख़बार खरीदें उसी दो रुपये में अपने पहनने को धोती क्यों न मोल लें। इतने में विज़िटर्स बुक आप के पास लाई गई जिसपर उन्होंने एक लम्बा नोट लिखा। जिसका तात्पर्य यह था कि "स्कूल में दरकार चीज़ों की बड़ी कमी है, शिक्षकों का वेतन बहुत कम है, प्राथमिक शिक्षा के लिये गवर्नमेंट से उत्तेजना की कमी है" माडरनरिव्यू में हार्डी की जांच का और बहुत सा हाल दिया है हम इसे यहीं पर समाप्त करते हैं और इस्से पाठकों को मालूम हो गया होगा कि दिहातियों की कैसी बुरी दशा है।

सूचना।

इस बार प्रेस की ढिलाई से देर हो गई पढ़ने वाले हमें क्षमा करेंगे आगे से ऐसा न होगा आगे के दो नम्बर हम उनकी सेवा में जल्द उपस्थित करेंगे। विशेष निवेदन यह है कि यह साहस हम उन्हीं पढ़ने वालों के भरोसे से कर गुज़रे हैं आशा है वे हमारी सहायता से मुख न मोड़ेंगे और जहां तक हो ग्राहक संख्या बढ़ाने में प्रयत्न से न चूकेंगे कि जिसमें ५०० ग्राहक हो जांय। बिना ५०० ग्राहक के यह चलेगा नहीं। न होगा तो हमें फिर तीन फर्म का पत्र कर देना पड़ेगा। आगे बढ़ कर पीछे हटना भी कादरता है पर यह पाठकों ही के आधीन है कि वे हमें सम्हाललें "नहिं विद्या नहिं बाहु बल नहिं खरचन को दाम। ऐसे पतित पतंग की तुम पत राखो राम"—।

REGD. No. A. 305

हिन्दी प्रदीप

मासिक पत्र।

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट ह्वै आनन्द भरै।
बचि दुसह दुरजन वायु सों मणिदीप समथिर नहिं टरै॥
सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामे जरै।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै॥

जिल्द ३० | फरवरी १९०८ | संख्या २

विषय सूची।

पण्डित बालकृष्ण भट्ट सम्पादक और प्रकाशक के

आज्ञानुसार पं० शीतलप्रसाद त्रिपाठी ने अभ्युदय प्रेस प्रयाग में छापा

सभायें पुस्तकालय और विद्यार्थियों तथा असमर्थों से अग्रिम २॥)
समर्थों से ३।=) पिछले अङ्कों की पूरी जिल्द फी जिल्द मै पोस्टेज २)
नमूने की कापी का =) बिना मूल्य किसी को न दी जायगी।

-:॥ श्री ॥:-

हिन्दी प्रदीप

जिल्द ३० { फरवरी सन् १९०८ ई० { सं० २

महाभारत के समय का भारत।

महाराज रामचन्द्र के समय से जब हम धर्मराज युधिष्ठिर के समय को मिलाते हैं तो देश की हर एक बातों में बड़ा अन्तर पाते हैं। यद्यपि युधिष्ठिर धर्म के अवतार माने गये हैं सत्य और साधुता आदि सद्गुणों का चित्र उनके चरित्र में व्यासदेव ने भरपूर उतारा है पर महाराज रामचन्द्र के अकृत्रिम सौहार्द आदि गुणों का लेश भी उस चित्र में न आ सका। श्रीरामचन्द्र का समय आर्य्यों की पुरानी सभ्यता और उन के समस्त सद्गुणों का सूर्योदय था किन्तु पाण्डवों का समय उस सभ्यता का मध्याह्न था। श्रीरामचन्द्र के समय आर्यों का उदय देश में पंजाब अवध या ब्रह्मावर्त और कुछ प्रान्त विहार या तिरहुत तक हुआ था। पाण्डवों के समय संपूर्ण भारतवर्ष में आर्य लोग फैल गये थे। अनार्य दस्यु या राक्षस रामचन्द्र के समय समस्त विन्ध्य के दक्षिण के देशों में बसे हुये थे। तथा बहुत बड़ा हिस्सा विन्ध्याचल के उत्तर का उन्हीं राक्षस और असुरों के अधिकार में था। मथुरा जो पाण्डवों के समय यादव वंशी क्षत्रियों की राजधानी थी जिसका वर्णन कवियों ने बड़े धूम धाम के साथ किया है लवण असुर के अधिकार में थी और मथुरा के आस पास का भू भाग सब उजाड़ पड़ा था। लवण भी विराध और रावण आदि राक्षसों की भांत आदमख़ोर था। आदमियों को मार कर खा जाता था

और जंगली मनुष्य था। शत्रुघ्न ने उसे मार कर मथुरा बसाया था। बक और हिडंब आदि राक्षस भी जिन्हें भीमसेन ने मारा है उनके आख्यानों से मालूम होता है कि बहुत से ऐसे मनुष्य मांस भक्षक पाण्डवों के समय तक कहीं २ बच रहे थे। वाल्मीकि के लेख से प्रगट है कि भरत जब चित्रकूट में श्रीरामचन्द्र से मिलने को चले हैं तब रास्ता साफ़ करने वाले बहुत से लोग कुदारी और फरुहा साथ लिये रास्ता साफ़ करने को उनके आगे चले हैं। पाण्डवों के समय श्रीकृष्ण रथ पर हस्तिनापुर से द्वारिका को गये हैं। जिन २ देशों से गुज़रे हैं उनके नाम दिये गये हैं। इससे सिद्ध है कि महाभारत के समय में इतनी सभ्यता लोगों में आ गई थी कि सड़क आदि का प्रबन्ध और टिकने की सरांय इत्यादि के क्रम पर कुछ बनावें। रामचन्द्र चित्रकूट से रामेश्वर तक सीता को खोजते हुये गये हैं सम्पूर्ण देश का देश सिंह बाघ आदि भयंकर शिकारी जानवरों से भरा था सैकड़ों कोस की दूरी पर अगस्त और सुतीक्ष्ण ऐसे दो एक ऋषियों का स्थान उन्हें मिला है। पाण्डवों के समय दक्षिण के ये सब देश आवाद हो गये थे अच्छे २ नगर और राजधानियां उनमें बन गई थीं। भोजकट ऐसे दक्षिण के कई नगरों के नाम भारत में पाये जाते हैं और दक्षिण के कई राजे महाभारत के युद्ध में कौरव और पाण्डवों की कुमक को आये हैं। युद्ध शिक्षा भी पहले पूर्णता को नहीं पहुंची थी रामायण में अधिकतर पर्वत की शिला और पेड़ों की डालियों से युद्ध कहा है महाभारत के युद्ध में कैसी २ व्यूह रचना व्यासजी ने लिखा है। रामचन्द्र के समय देश का देश उजाड़ पड़ा था केवल अयोध्या मिथिला आदि दो एक नगर थे महाभारत के समय सौ सौ पचास पचास कोस की दूरी पर एक २ स्वच्छन्द राज्य और राजधानियां हो गई थीं। जिनमें बड़े २ प्रबल शक्तिशाली अस्त्र शस्त्र विद्या कुशल राजा राज करते थे। कृषि और वाणिज्य की भरपूर तरक्की थी लोग सब भांत मुदित प्रसन्न हृष्ट और पुष्ट थे धन संपत्ति से देश खचाखच भरा था। बौद्धों का ज़ोर भी उस समय तक नहीं होने पाया था। ऋषियों का चलाया हुआ शुद्ध वैदिक धर्म पर लोग चल रहे थे। चारो वेद और धनुर्वेद आदि उपवेद तथा आर्य ग्रन्थ का

पठन पाठन तीनों वर्ण के लोग करते थे, अब के समान तब कोई विदेशी भाषा देश में प्रचलित नहीं हुई थी। सब लोग बड़े ही पवित्रचरित्र के थे इससे Litigation क़ानूनों में इस कदर हिन्दी की चिन्दी नहीं होने पाई। रामचन्द्र का समय सभ्यता का सूर्योदय अर्थात् आदिम काल था इससे मालूम होता है कि सभ्यता के बढ़ने से बहुत तरह की बुराइयों का अंकुर भी उस समय तक नहीं जमा था। सभ्यता के बढ़ने से सब भलाई ही हो सो नहीं बहुत सी बुराइयां भी फैल जाती हैं। लोगों में दमन तब विशेष था। लोभ, मोह, मद, मात्सर्य को प्रजा में फैलने का अवकाश ही तब न था। इसीसे रामचन्द्र भरत को राज देते थे पर भरत ने उसे स्वीकार न किया। युधिष्ठिर के समय सभ्यता का मध्य दिन था और सभ्यता अपनी अन्तिम सीमा तक पहुंच चुकी थी इसीसे लोभ आत्म सुख अभिलाषा और आपस की स्पर्द्धा इतनी बढ़ गई कि राज के लिये भाई २ कट मरे। पर उद्यम, साहस, धैर्य, बल, वीर्य्य, स्थिर अध्यवसाय आदि पौरुषेय गुणों में अन्तर नहीं पड़ा था। बल्कि वे गुण बराबर बढ़ाते ही गये। बहुत तरह की नई २ विद्या और कितने तरह के नये २ अस्त्र शस्त्र तथा शिल्प विज्ञान भी इस समय सभ्यता के बढ़ने के साथ ही साथ बढ़ते गये और बराबर बढ़ते जाते । पर होन हार अमिट है। महाभारत का युद्ध ऐसा सर्वनाशकारी हुआ कि भारत के पुनरुत्थान का सितारा क्रमशः डूबता ही गया। आस पास के देश जो यहां के चक्रवर्ती राजाओं के बाहुबल से सदा दबे रहते थे और कभी उभड़ने का मन भी न करते थे पीछे वे ही प्रान्त वर्ती देश के लोग और वहां के सम्राट् राजा जैसा सिकन्दर इत्यादि प्रबल पड़ हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करने लगे और उलटा भारत ही को दबाने तथा यहां के लोगों को अपना वशंवद करने में कृतकार्य हुए।

महाभारत के युद्ध का धक्का यद्यपि आस पास के देशों को भी कुछ न कुछ लगा पर वे देश प्रबलता में सब भांत हम से आगे बढ़ते ही गये। टरकी, ईरान, परशिया, तुरकिस्तान तातार आदि देश महाभारत के युद्ध के उपरान्त बौद्धों के समय तक भारत के आधीन थे। क्योंकि

क्षेमेन्द्र ने अवदान कल्पलता में बहुत से ऐसे नाम दिये हैं जहां बुद्धदेव ने जाकर अपना मत फैलाया और बुद्ध धर्म की दीक्षा लोगों को दी बहुधा वे नाम उन्हीं देश के नगरों से मिलते हैं। ऐसा मालूम होता है कि इरान से सिन्धु नदी के तट तक आर्यों के निवास की मुख्य भूमि थी। आतश परस्त पारसियों में जैसा आर्यों का रक्त संचालित देख पड़ता है वैसा हम हिन्दुओं में नहीं है। या, यों समझिये एक ही बाप के जैसे दो पुत्र अलग २ दो ठौर जा बसैं वैसा ही ये पारसी अपनी धर्म पुस्तक ज़िन्दावस्ता ले सर्वथा अलग हो गये यहां तक कि वैदिक धर्मावलम्बी आर्यों ने उनसे कोई सरोकार न रक्खा। वेद के अनुसार चलने वाले आर्यों का दस्यु और असुरों के साथ घिस्ट पिस्ट होने से उनके चेहरे का रंग और देह के प्रत्यङ्गों के संगठन में कुछ थोड़ा अन्तर पड़ गया। पर मस्तिष्क की लोकोत्तर शक्ति उनमें जैसी की तैसी बनी रही। पीछे इन्हीं वैदिक आर्यों ने इन दस्यु और असुरों को भी आर्य बना लिया अब इस समय समस्त हिन्दू जाति अपने को आर्य वंशी कहती है। अस्तु इन अप्रासंगिक बातों का ज़िकिर यहां इस समय छेड़ना व्यर्थ है अतः प्रकृतमनुसरामः—

इन आर्यों में मस्तिष्क की शक्ति प्रबल है सो इससे सिद्ध है कि ये जहां कहीं एक दो भी होंगे वहां समस्त जन समूह के शिक्षक नेता या प्रधान बन बैठेंगे। दण्डक का बड़ा हिस्सा जनस्थान जो किसी समय इन्हीं दस्यु असुर और राक्षसों की वास भूमि थी वहां आर्यों में एक अगस्त जा बसे थे पर अगस्त सम्पूर्ण दक्षिणात्य दस्यु और राक्षसों के पूज्य हुये रामचन्द्र को भी रावण के जीतने में अगस्त से बहुत सहायता मिली। ऐसा ही सुग्रीव जामवन्त और हनूमान आदि जिन को बाल्मीकि ने रीछ और बन्दर लिखा है सब के सब उन्हीं दस्युओं के फिरके के रहे होंगे रावण से और इनसे फरक केवल इतना ही था कि ये आदमखोर न थे। दक्षिण के देशों में धरती पहाड़ी होने से अन्न कम पैदा होता था फल और कन्दमूल विशेष। सुग्रीव और जामवन्त आदि कन्दमूल तथा फल खाकर अपनी ज़िन्दगी काटते

थे इसी से ये रीछ और बन्दरों की कोटि में शामिल कर लिये गये रामचन्द्र महाराज शुद्ध आर्यवंशी थे उन्होंने ने इन रीछ और बन्दरों को अपना अनुयायी बनाय उनसे अपना काम निकाला रावण को जीतने में और सीता को रावण के क़ैद से निकाल लाने में श्रीराम चन्द्र को इन्हीं रीछ और बन्दरों से बड़ी सहायता मिली। ऐसाही पाण्डवों ने भी घटोत्कच आदि कई राक्षसों को अपने में मिलाय उन्हें आर्य बना लिया। विराट राजा के यहां कीचक जिसे भीमसेन ने मारा था उन्हीं दस्युओं में था। इतिहासों को ख़ूब टटोलो तो पता लग जायगा कि अभी हाल के ज़माने तक यह बात प्रचलित रही कि आर्य जातिवाले इन दस्यु वंशियों को बराबर अपने में मिलाते उन्हें दस्यु और किरात से आर्य करते गये। मुसल्मानो के हमलों के उपरान्त जित जाति Conquered Nation हो जाने से वह जोश और गरमी इन्में से निकल गई। दूसरी जातिवालों को अपने में क्या मिलावेंगे ये खुद दूसरों का मज़हब कुबूल कर अन्य जातिवाले होते जाते हैं। हज़ारों लाखों हिन्दू मुसलमान हो गये और अब क्रिस्तान होते जाते हैं। इसी से बराबर हम इस बात को कह रहे हैं कि जब तक Life पौरुषेय गुण विशिष्ट जीवन और जोश तथा Nationality जातीयता का भाव किसी कौम में क़ायम है उस समय जो कुछ उसके मस्तिष्क से निकलेगा या जो कुछ काम वह करेगा सबों में उत्तेजना रहेगी दास हो जाने पर जो बात कोसों दूर हट जाती है। मुसलमानों के राजत्व काल में जो ग्रन्थ बने अथवा जो रीति या क्रम अपने लोगों में प्रचलित किया गया सब त्याज्य हैं। उन ग्रन्थों को मानने या उन रीति या क्रम के अनुसार चलने से हम स्वराज्य के योग्य कभी नहीं होंगे।

अस्तु तो निश्चय होगया कि महाभारत के युद्ध का समय भारत तथा आर्यों के बल और वीर्य; समृद्धि और बैभव; बुद्धि तत्व ; या सद्विचार प्रणाली; तथा स्थिर अध्यवसाय, आदि की प्रौढ़ता का था यदि वही हालत हिन्दुस्तान की अब तक क़ायम रहती तो तमाम दुनियां का एकाधिपत्य इस समय इसे प्राप्त हो जाता किन्तु अफ़सोस देश में सम्पत्ति

और वैभव बढ़ने के साथ ही साथ परस्पर की स्पर्द्धा द्वेष और आत्म सुखाभिलाष उस समय इतना अधिक बढ़ गया कि जिससे हमारे अधः पात के बीज का बोना बहुत सहज होगया। जिस समय यह युद्ध हुआ है उस समय न्हिदुस्तान का कोई कोना या प्रदेश नहीं बचा था जहां सब तरह की पूर्ण जागृति न रही हो। इस युद्ध की हेतु भूत या प्रधान कारण कृष्ण महाराज की कुटिल पालिसी थी। भारत का कोई भाग न बच रहा था जहां इनकी पालिसी की दुरभिसन्धि का असर न पड़ा हो। कौरव और पांडव दो इस युद्ध के प्रधान नेता तो थे ही किन्तु उस समय के समस्त छोटे बड़े राजे महाराजे इस युद्ध के किसी न किसी दल में आ शरीक हुए थे। न केवल हिन्दुस्तान ही तिब्बत तातार बलख बुखारा और चीन तक के नरपाल युद्ध में कट मरे। जो भूपाल स्वयं न आये उन्होंने अपनी बहुत सी सेना और युद्धोत्सा ही वीरों को लड़ने के लिये भेजा। कुछ ऐसा भी मालूम होता है कि इस समय वीरता का दर्प इतना लोगों में आ समाना था कि वे अपने भुजा का बल दिखाने का मौका ढूढ़ रहे थे।

यद्यपि कंस काशिराज चेदी का राजा शीशुपाल और शाल्व आदि बहुत से राजाओं का संहार कर उस समय के युद्धोत्साही वीर क्षत्रियों में कृष्ण महाराज महा मान्य हो चुके थे। इनके लिये सब से बड़ी बात यंह हो चुकी थी कि जरासन्ध जो उस समय एक तिहाई हिन्दुस्तान अपने अधिकार में किये था और जो कई बार इन्हें हरा चुका था उसका राज नीति के द्वारा भीम से बध कराय मगध की बड़ी भारी सलतनत तोड़ चुके थे फिर भी महाभारत के युद्ध में वीरता और युद्धोत्साह का समुद्र उमड़ रहा था। ऐसा मालूम होता है उस समय के राजा लोग और क्षत्रियों का दो दल था। एक वे थे जो स्वयं कुलीन होकर कृष्ण महाराज को सर्वश्रेष्ठ मान बैठे थे। दूसरे दल के वे थे जो सब भांत इनके विपक्षी थे। इनको अपने से किसी बात में उत्कृष्ट नहीं मानते थे। उन्हीं को असुर और दैत्य की पदवी दी गई। कृष्ण को क्षत्रियों के क्षय के कलंक से बचाने को पृथ्वी का भार उतारने का प्रतिष्ठा पत्र उन्हें दिया जाता

है किन्तु ऐसे भार उतारने को कौन सराहेगा जिससे ऐसा भारी धक्का लगा कि देश फिर आज तक न पनपा। वेही अलबत्ता सराहेंगे जिनको देश के दुर्गति की चोट का असर बिलकुल नहीं पहुंचा जो स्वार्थ की मूर्ति और आत्म-सुख रत हैं। इस्मे सन्देह नहीं श्रीकृष्ण भगवान् अपनी असाधारण लोकोत्तर बुद्धि से इस घोर संग्राम का जो कुछ परिणाम हुआ सब समझे हुये थे चाहते तो कौरव और पाण्डवों में मेल कराय भारत को इस महान संक्षय से बचा देते पर न जानिये क्यों उनकी यह त्रिकाल दर्शिता हमारे लिये सर्व नाशकारी हुई। यदि यह कहा जाय कि कृष्णचन्द्र ने यह सब निज बंश यदुकुल की प्रतिष्ठा बढ़ाने को किया सो भी नहीं हुआ अन्त में सब के सब यादवकुल वाले आपस में लड़ कट मरे। इससे सिद्ध होता है कि त्रिकालज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण ने यह सब स्वार्थ बुद्धि से नहीं किया अपिच यह दरसाया कि प्रत्येक देश और जाति के ह्रास और वृद्धि में Law of Compensation क्षति या हानि पूरक एक प्राकृतिक नियम सब ओर संसार भर में व्याप रहा है। जो कभी इस धरातल के एक ही भू भाग या एक ही जातिवालों को चाहे वे कैसे ही गोरे से गोरे या काले से काले क्यों न हों बराबर उन्नति या अवनति की दशा में नहीं रहने देता बरन चक्र नेमिक्रम अर्थात् रथ की पहिया सा ऊंचा नीचा हुआ करता है।

"नीचैर्गच्छत्युपरिच दशा चक्रनेमिक्रमेण"। औा भो
"संयोगा विप्रयोगान्ताः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः"।

संयोग के साथ वियोग लगा रहता है। मनुष्य ऊंचा तभी तक होता जाता है जब तक गिरता नहीं। तो किसी को अपनी तरक्की का घमण्ड नितान्त व्यर्थ है। महाभारत का युद्ध मानों इस तरह के दर्पान्धों को शिक्षा दे रहा है कि तुम चार दिन की चांदनी के समान अपनी वर्तमान बढ़ती का घमण्ड न करो तुम भी एक दिन गिरोगे।

———

दल का अगुआ कैसा हो ?

दल या जमात का अगुआ सदा एक होता है दो चार नहीं जहां दो चार अगुआ बनते हैं और वे अपनी प्रतिष्ठा और अपनी राय सब के ऊपर रक्खा चाहते हैं वह जमात छिन्न भिन्न हो जाती है। सब लोग तितिर बितिर हो उस दल को क़ायम नहीं रक्खा चाहते। इसी बुनियाद पर कहा गया है:-

"सर्वे यत्र विनेतारः सर्वे पण्डित मानिनः।
सर्वे महत्व मिच्छन्ति तद्वृन्द मवसीदति" ॥

जहां सभी अगुआ बनते हैं, सब लोग अपने को बुद्धिमान मानते हैं, एक ही आदमी की अक़िल पर रहनुमा नहीं हुआ चाहते, सबी अपना २ बड़प्पन चाहते हैं वह जमात मुसीबत में पड़ जाती है। कदाचित् इसी बात का खयाल कर किसी ने कहा है "न गणस्याग्रतो गच्छेत्" किसी दल का अगुआ न हो अर्थात् पहले किसी बात का नमूना आप न दिखलावे इस लिये कि उस काम के बन जाने पर नमूना बनने वाले को विशेष लाभ नहीं और जो उसके नमूना दिखलाने से काम बिगड़ गया तो सब लोग उसी की फ़ज़ीहत करने लगते हैं। पर यह तो क्लीवता और नामर्दी है सैकड़ों बुराइयां हमारे समाज में इसी से नहीं मिटाये मिटतीं किसी को इतना साहस नहीं है कि पहले खुद कर दिखावे। अच्छे पढ़े लिखे लोगों में इतनी हिम्मत नहीं है तब अपढ़ बेचारों का क्या कहना? जैसा बाल्य विवाह के संबन्ध में किसी को साहस नहीं होता कि रजोदर्शन के उपरान्त कन्या का विवाह करने में नमूना बने। कान्फ़रेन्स और कमेटियों में बहस और विवाद बहुत करेंगे पर करके कुछ न दिखावेंगे। सच मानिये बाल्य विवाह की जड़ कभी नहीं कट सकती जब तक कन्या में रजोदर्शन की क़ैद क़ायम है। अस्तु अब यहां पर विचार यह है कि अगुआ कैसा होना चाहिये। अगुआ में सब से बड़ी बात यह है कि वह अपने मन से कोई काम न कर गुज़रे जब तक सब की राय न ले ले और सबों का मन न टटोल ले।

दूसरे उसमें शान्ति और गमखोरी की बड़ी ज़रूरत है। जिस काम के बनने पर उसका लक्ष्य है उस पर नज़र भिड़ाये रहैं दल में कुछ लोग ऐसे हैं जो उसके लक्ष्य के बड़े विरोधी हैं और वे हर तरह पर उस काम को विगाड़ा चाहते हैं। अगुआ को ऐसी २ बात कहेंगे और खार दिलावेंगे कि वह उधर से मुंह मोड़ बैठै और क्रोध में आप सर्वथा निरस्त हो जाय। ऐसी दशा में यदि उसमें शान्ति और गमखोरी न हुई तो बस हो चुका काहे को वह उस काम के साधने में कभी कृतकार्य होगा। फिर अगुआ अपने सिद्धान्त का दृढ़ और मुनसिफ़ मिज़ाज हो। कहावत है "सुनै सब की करै अपने मन की" क्षुद्र से क्षुद्र का भी निरादर न करे अपने मन्तव्य के विरुद्ध राय देने वालों को ऐसे ढंग से उतार लावे की "न साप मरै न लाठी टूटै" सिवा इसके अगुआ को सर्व प्रिय हर दिल अज़ीज़ होना चाहिये जब तक सब लोग उसे प्यार न करेंगे और चित्त से उसका आदर न करैंगे तब तक उसके कहने को स्वीकार कैसे कर सकते हैं। किसी का आदर तभी होता है जब मन में उसको रहने की जगह हो।

अगुआ के लिए चरित्र का शुद्ध होना बड़ी भारी बात है। जो चरित्र के शुद्ध नहीं हैं जिनका चाल चलन दगीला है वे कैसे दूसरों के चित्त पर असर पैदा कर सक्ते हैं। विशेष कर सामाजिक मामिलों में जो समाज का अग्रणी हो उसे चरित्र का पवित्र होना ही चाहिये। जैसा धर्म सबम्न्ध में हमारा अगुआ गुरू होता है बहुधा गुरू वही किया जाता और माना जाता है जिसका चरित्र कहीं से किसी अंश में दूषित न हो "वर्णानां ब्राह्मणों गुरुः" चारो वर्ण में ब्राह्मण गुरू या अगुआ है तो निश्चय हुआ कि ब्राह्मण निर्दूषित चरित्र हों। इस समय ब्राह्मण जो दूषित चरित्र होगये तो और लोगों को उन पर आक्षेप करने का मौका मिल गया है। और २ प्रान्तों की हम नहीं कहते हमारे यू० पी० में इस समय सबों की रुचि के समान अच्छे राजनैतिक अगुआ की बड़ी ज़रूरत है। हमारे नई उमंग वाले बिना किसी अगुआ के बिलबिला रहे हैं कोई हांथ पकड़ उन्हें चलाने वाला नहीं मिलता।

शान्ति प्रिय छोटे लाट श्रीमान् ह्युयेट साहब अपने प्रान्त में शान्ति बहुत चाहते हैं उन्हें इस प्रान्त के अगुआओं को धन्यवाद देना चाहिये यह इन अगुआओं की करतूत है कि देश में अशांति नहीं फैलने पाती और अगुआ लोग ऐसी हिकमत से काम कर रहे हैं कि पंजाब और बंगाल की तरह यहां अब तक अशांति ने कदम नहीं रक्खा। पर हमारे अगुआ दोनों ओर से च्युत हैं। "दोनो दीन से गये पांड़े, न रहे भात न रहे माड़े" समय पर जहां उचित समझते हैं गवर्नमेंट की ओर से अनीति समझ सरकार को टोंक देते हैं और उस अन्याय के दूर करने को चिताते और न्याय मांगते हैं इस्से गवर्नमेंट में कदर नहीं पाते। ईधर गरम दल वाले उन्हें सरकार का खुशामदी और खैरख्वाह कह बदनाम किये हुये हैं। उन्हें उचित रहा दोनों को खुश रखते और दोनों से सूर्खरूई पाते। नहीं तो प्रजा की ओर से सुर्खरुई तो बहुत आवश्यक थी। निःसन्देह अगुआ होने का काम बड़ा टेढ़ा और बिना सिंहासन का राज्य है। राजा का अटल और सुस्थिर राज्य तभी होता है जब सबों को प्रसन्न करता हुआ प्रजाको मनो रंज न हो। वैसाही अगुआ का रोब और दबदबा तभी रहेगा जब वह सबों के मनकी करेगा नहीं तो वह एकसे मीठा दूसरे दलसे खट्टा बना रहेगा और जिस काम को करना चाहता है कृतकार्य उसमें कभी न होगा।

जापानी जातीय जीवन के उपवीत समय की पांच आज्ञायें

(ठाकुर गदाधर सिंह लिखित)

जापानी सेना रूसियों पर बराबर विजय प्राप्त करती रही। युद्ध के आरंभ में कौन विदेशी अनुमान करता था कि ऐसा संभव होगा? रूस निःसन्देह संसार में एक सर्वश्रेष्ठ महाराजा हैं। नहीं बलिक वह इस से भी अधिक "जब्ला बोग" पार्थिव परमेश्वर हैं। उनके विरुद्ध खड़े होकर—जापान, एक एशियायी भुनगा, भला कभी जय प्राप्त करने का स्वप्न भी देख सकता है?

विदेशियों का यही अनुमान था। "पूर्वी संसार, पश्चिमी जातियों की भोग्य भूमि है" यही यूरोपियन जातियों का एक प्रकार सगर्व विश्वास हो चला था। तभी तो पहिले धर्म प्रचार के मिस से जेसुयिट पादरी लोग पधारे पीछे अबाध्य व्यापार का टोकरा लेकर सारा यूरोप अपने अपने वास्ते बन्दर पकड़ने दौड़ा था?

सो यूरोपियन जातियों के "व्यापार का बाज़ार जापान" लड़ाई में मुकाबिला करने के वास्ते महाराजाधिराज सम्राट् रूस के सामने खड़ा हो कर जीत जायगा? यूरोप की निगाह में यह एक अनहोनी बात थी। परन्तु दुनियां ने प्रत्यक्ष देखा कि जापान आरंभ से ही विजयी होता आ रहा है चेमलपू सागर संग्राम में उसने विचित्र कौशल दिखलाये, पोर्टआर्थर की समुद्र की लड़ाई देख संसार दंग रह गया।

परन्तु इतने पर भी राय रूसियों की तरफ़ ही रही थी। कहा जाता रहा कि रूसी तय्यार नहीं थे। समुद्री शक्ति में जापान ने इंगलिस्तान की नक़ल करके कुछ सीख लिया है। इसी से समुद्री लड़ाइयों में कामयाब रहा। संभव नहीं कि मैदान की लड़ाई में रूसी शिक्षित सेना समूह के मुकाबिले मुट्ठी भर जंगली जापानी कुछ भी ठहर सकें।

पर यालू तट की लड़ाइयों ने दुनियां का यह शुबहा भी दूर कर दिया। और जब "लियावयाङ्ग" के महा मोरचे भी रूसियों को लड़ाई में हार कर, अगत्या छोड़ने पड़े तब तो यूरोपियन शक्तियों की अंगुली दांतों तले अनायास ही चली गई और मालूम हो गया कि जापान एक "भुनगा" नहीं वरन एक जीवित जाति और एक एशियायी शक्ति है। उसके सिपाही शिक्षा, आज्ञाकारिता और सहन शक्ति में रूसियों के न केवल बराबर वरन उन से अधिक हैं।

इतना होने पर अब यूरोपियन सम्मतियां व्यक्तिगत आलोचनाओं पर आन उतरीं। अमुक सेनापति (जनरल) के युद्ध प्रबन्ध में यह चूक हुई, अमुक ने उस प्रबन्ध से मैदान मारा, इत्यादि।

परन्तु जापानी राय बहादुर लोग कहते हैं कि ये सब आलोचनायें ठीक तो हैं और ध्यान देने योग्य भी हैं, परन्तु हैं वे सब केवल गौण

मुख्य नहीं हैं यूरोपियन लोग भले ही हार जीत का भार सेनापतियों के माथे मढ़ें परन्तु जापान व्यक्तिगत विश्वास के भुलावे में नहीं आ सकता। उसका विश्वास, उसके प्रबन्ध, उसकी प्रस्तुति और उसकी उत्तर देने की कर्तव्यता का भार सार्वजनिक है व्यक्तिगत कदापि नहीं। जापान के सम्पूर्ण सेनापतियों, सारे सैनिकों और समस्त प्रजा की इच्छा एक है, कर्तव्य एक है, सब के सिर पर बराबर भार है, और उत्तरदेनेकी कर्तव्यता भी सब की समान है। कृतकार्यता का यही एक मुख्य कारण है। सम्पूर्ण सेना एकही सूत्र से बंधी हुई है और वह "सूत्र संस्कार" (यज्ञोपवीत संस्कार ?)—अपनी जातीय सेना का सूत्र संस्कार—जिसे महाराजा मिकाडो मत्सुहितू ने तारीख़ ४ जनवरी १८८२ ईस्वी को किया था।

जापानी बड़े गौरव के साथ कहते हैं कि हमारी फौज़ों में वही संस्कार समय की पांच आज्ञायें पूर्ण रूप से अपना स्वरूप सर्वत्र दर्शा रही हैं।

सो यदि सचमुच ही जापानी सेना का साम्प्रतिक आश्चर्य्य चमत्कार उन पांच मंत्रों के ही प्रभाव से हो तो वे मन्त्र निःसन्देह सबों के साधन और आराधना के योग्य हैं।

उपरोक्त मन्त्र अपनी साधन के क्रम समेत तारीख़ ४ जनवरी १८८२ ई० की राजाज्ञा से इस प्रकार जापानी सेना के प्रति उतरे थे।

"इस देश जापान की सेना सनातन समय से—पुश्तहा पुश्त महाराजा की प्रधान आज्ञा के आधीन चली आई है ? ढाई हज़ार वर्षों से अधिक समय व्यतीत हुआ जब कि महाराजा "जिम्मू" ने मध्य देश की कतिपय जंगली जातियों को दबा कर अपना राज सिंहासन दृढ़ किया था। वह संग्राम स्वयम् महाराजा संचालित था। और उस समय की सुविख्यात शूरवीर "ओटोमो" और "मनोनोबी" जातियों ने समर में योग दिया था। उसके बाद भी प्रायः सर्वदा ही लड़ाइयां होती आई हैं। और सदाही सेना संचालन महाराजा के हांथ में रहा है। कभी कभी लड़ाइयों का प्रधान पद महारानी या राजकुमार के हांथ में दिया गया है परन्तु अन्यथा कभी नहीं।

दरमियानी समय में देश का सम्पूर्ण प्रबंध–चाहे फौज़ी अथवा मुलकी–सब चीन देश की प्रथा के अनुसार चलाया गया था। सेना सम्बन्धी छः प्रधान भाग (Garrison) नियत किये गये थे। और दो मुख्य स्थान घोड़ों की तय्यारी के लिये। तथा सीमा प्रान्तों पर रक्षक दल (Frontier Guards) स्थापित किये गये थे। सेना का प्रबंध और विभाग इस प्रकार बड़ी उत्तमता का हुआ था। परन्तु यह सब केवल कागज़ों ही पर रह गया।

बहुत काल से शान्ति सुख का भोग करते करते हमारे देश की सैनिक योग्यता का प्रायः विनाश सा हो गया। किसानों और योद्धाओं की दो अलग अलग जातियां बन गईं।

(पाठक ! स्मरण करें, जातीयता के लिये जातियों के विभाग सदा हानिकारक होते हैं।)

योद्धाओं की जाति जो देश में "बुशी" के नाम से विख्यात है उसका पेशा सिपाह गरी बन गया। और उसी जाति के मुखिया लोगों ने अपने अपने अलग अलग जत्थे क़ायम कर लिये और वे ही धीरे धीरे सेनाओं के संचालक जनरल बन बैठे। देश की संचालक शक्ति इस प्रकार उनके हांथों में क़रीब सात सौ वर्षों तक रही।

यह कदाचित परमेश्वरी इच्छा थी ! मानव शक्ति से उसका पलट जाना कठिन था। परन्तु उसके कारण जापानी जाति की राज्य प्रथा मे बहुत बड़ी निर्बलता आ गई थी। हमारे पूर्वजों की स्थापित की हुई जातीय राज्यप्रणाली अस्तव्यस्त हो गई थी।

"कोका" राजत्व काल (सन् १८४४ ई०) से "केयी" राजत्व काल (सन् १८४८) तक "तोकू गावा" शोगन का समय बड़ी निर्बलता का समय आया। वह समय अधिकन्तु इस कारण बड़ा नाज़ुक था कि विदेशियों की दरख़ास्तें बराबर, पयदर पय, देश में आकर व्यापार करने की गुज़र रही थीं॥

इस दशा को देखकर हमारे पितामह महाराजा "निन्को" को बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई थी। वह चिन्ता हमारे पिता महाराजा "कोमी" के समय में और भी बढ़ गई थी।

हम को भी वैसे ही अवस्था मे राज सिंहासन पर बैठना पड़ा। परन्तु सौभाग्य वश थोड़े ही काल में समझदार शोगन "तोकूगावा" ने अपने सम्पूर्ण अधिकार हमारे हांथों में दे दिये और अन्यान्य राजाओं ने भी शोगन का अनुकरण किया।

इस प्रकार एक वर्ष के भीतर ही सम्पूर्ण देश एक सूत्र में आबद्ध हो गया। हमने फिर से सनातन राज प्रथा का अवलम्बन किया। इस सम्पूर्ण काया पलट का प्रधान कारण यही हुआ कि हमारे देश के सभी लोग अवस्था की असलीयत को जान गये हैं। और भले बुरे की पहिचान स्वयमेव कर सकते हैं।

हम को राज सिंहासनारूढ़ हुए पन्द्रह वर्ष व्यतीत होते हैं तब से सैन्य संस्कार में हमने विशेष मनो योग दिया है। और जलस्थल दोनों प्रकार की सेनाओं को हमने इस प्रकार पर बनाया है कि,जिसमें हमारा देश संसार में नामवर हो। सम्पूर्ण सेना अब हमारे आज्ञाधीन है। समय समय पर सेनापति लोग हमारे द्वारा नियुक्त किये जा कर सैन्य संचालन करेंगे। परन्तु प्रधान अधिकार सेनाओं का सदा हमारे ही हांथ में रहेगा।

हमारी इच्छा है कि सब लोग इस बात को जान लेवैं, स्मरण रक्खें, और अपनी सन्तान को भी बतला देवैं कि जापान की जलस्थल सेना का कमान्डर इन चीफ़-सेनापति-स्वयम् महाराजा है। और सेना का प्रत्येक सिपाही अपने उसी सेनापति का निकट तर सम्बन्धी है।

स्मरण रहे कि देश फिर कभी किसी प्रकार के आलस्य में पड़कर अपने इस सम्बन्ध को कदापि न भूलें।

हम तुम्हारे सेनापति हैं। हमारा भरोसा प्रत्येक सैनिक पर अलग अलग और एक साथ ठीक वैसा ही और उतना ही है जैसा कि अपने

निज हाथों पर। हमारी इच्छा है कि तुम भी हमारे साथ वैसाही निजका सम्बन्ध जोड़ो जैसा अपने निज शिर का हाथों के साथ होता है। जिस से हमारे परस्पर सहभाव, सचाई, विश्वास और भरोसा सदा वैसे ही स्थिर रहैं जैसा कि शरीर में प्राण रहते हाथ और सिर के बीच रहता है।

हम अपने कर्तव्य पालन कर सकैंगे या नहीं, यह नितांत इस बात पर निर्भर है कि तुम अपने कर्तव्य भली भांति पालन करते हो या नहीं।

यदि हमारा देश दूसरी जातियों के समक्ष उच्च स्थान अधिकार न कर सके तो हमारी इच्छा है कि तुम सब लोग हमारे साथ दुःख करो और दर्द शरीक़ होओ।

और यदि देश का रुतबा आला हो जाय तो हम भी तुम्हारे साथ ही साथ उसके फलों के भागी और भोगी बनैंगे।

अतएव अपने कर्तव्य पर दृढ़स्थिर रहो और अपने देश की रक्षा में हमारी सहायता करो। परिणाम इसका अवश्यमेव जातीय प्रताप की वृद्धि और देश के नामवरी की बढ़ती निश्चित समझो।

हमको तुमसे इतना ही कहना नहीं है। हम पांच मंत्र और तुमको उपदेश करेंगे। यथाः—

(१) सैनिक का प्रधान कर्तव्य अपने राजा और अपने देश की "वफ़ादारी" है। संभव नहीं है कि कोई आदमी जिसने इस देश जापान में जन्म ग्रहण किया है वह स्वदेशानुराग में तनिक भी कम हो। परन्तु सिपाही में इस (स्वदेशानुराग) की मात्रा बहुत चढ़ी बढ़ी होनी चाहिये। क्योंकि जिस सिपाही में स्वदेशानुराग की मात्रा ज्वलन्त न हो वह देश की सेवा के अयोग्य होगा। बिना स्वदेशानुराग के आदमी कठपुतली की भांति होगा चाहे उसकी शिक्षा दीक्षा और क़ाबलियत लियाक़त कितनी ही चढ़ी बढ़ी क्यों न हो। ऐसे ही, खूब सीखे हुए और सैनिक ज्ञान विज्ञान (Military art and Science) के जानने वाले आदमियों की सेना जिसमें स्वदेशानुराग और वफ़ादारी न हो वह बिना प्राण के शरीर की भांति है।

देश की रक्षा और उसका नामवर उच्चाधिकार संपूर्ण रूप से हमारी सैनिक शक्ति पर निर्भर करता है।

सो जापान के देश और जाति का भाग्य तुम्हारी ही उत्तमता अथवा अधमता के आधीन है।

अतएव तुम्हारा धर्म है कि अपने कर्तव्य पालन में दृढ़ रहो और न तो सामाजिक बन्धन और न कोई राजनैतिक विचार अथवा मत मतान्तर सम्बन्धी भावनायें तुम्हारे कर्तव्य पालन के मार्ग में कोई रुकावट कदापि डाल सके। सदा स्मरण रहे कि "कर्तव्य" का भार बड़े पर्वत के बोझ की अपेक्षा भी बहुत गरू होता है।

(पाठक! हमारे श्रीकृष्णचन्द्रजी ने भी अपने ग्वाल वालों की जातीय सेना का संग्रह करके उनको यही उपदेश दिये थे। और गोवर्द्धन "भूवृद्धि" राज्य की वृद्धि और संग्राम के पहाड़ रूपी महाकर्तव्य को सब की सहायता से एक अंगुली पर उठा लिया था।)

कर्तव्य के सामने मौत इतनी हलकी है जितना कि एक छोटे पक्षी का पङ्ख।

कर्तव्य की अवहेलना से अपने उज्वल नाम को संसार के सामने कभी मैला न होने दो।

(२) सिपाही को अपने चलन और व्यौहार में सदा नम्र और आज्ञाकारी होना चाहिये।

सेना में प्रबन्ध और संचालन के अभिप्राय में ओहदे नियत होते हैं। ये बड़ाई छोटाई के विचार में नहीं किन्तु सैन्य संचालन और कार्य्य विभाग के वास्ते बनाये गये हैं।

ये ओहदे "फील्ड मार्शल" से लेकर "प्राइवेट" और "व्लूजाकट" तक होते हैं। एक ही ओहदे में बहुत से दरजे भी होते हैं। सीनियर-ज्यूनियर का भी ध्यान रक्खा जाता है।

इसका तात्पर्य्य यही है कि सेना के प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान हर एक के मान सन्मान और परस्पर सद्भाव और आज्ञाकारिता में प्रत्येक बना रहे।

ज्यूनियर को चाहिये कि अपने से सीनियर की आज्ञा का अनादर कभी किसी अवस्था में न करे।

ज्यूनियर को सीनियर से आज्ञा लेना चाहिये। उस आज्ञा को याद रक्खो—सीढ़ी सीढ़ी उतरते हुए हमारे निज मुख से निकली हुई आज्ञा-ही समझना चाहिए।

सेना सम्बन्धी प्रत्येक आज्ञा राजाज्ञा है और सेना का प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकार के अनुसार राज सत्ता सम्पन्न है।

(पाठक! इसी से तो हिन्दुस्तान में सैनिक का नाम राजपूत राजा का बेटा, रक्खा गया है। हां हां। तलवार धारी मात्र को राजपूत कहलाने का अधिकार प्राकृत है। और धिक्कार है उन लोगों को जो ताती बयार की लपट मात्र से भी भय भीत होकर आंचल ओट मुंह छिपाते हुए 'राजपूत' 'राजपूत' की टर्र हांकते हों।)

ऊंचे दरजे के अफ़सरों को कभी किसी अवस्था में भी तेज़ मिजाज़ी नहीं करना चाहिये। और न कभी किसी तरह का घमंड या बड़ाई छोटाई दिखलाना उचित है।

क़ानून का बर्ताव सदा अन्तिम अवस्था के लिये बचा रखना चाहिये। अन्य सब अवस्थाओं में अफ़सरों को अपने सभी मातहतों के साथ अनुग्रह और प्रेम का व्यौहार रखना योग्य है। जिसमें सभी सेना का एक दूसरे के साथ ऐसा घना सम्बन्ध मज़बूत हो जावे मानो सब मिल जुल कर कुल एक ही व्यक्ति हैं।

यदि परस्पर सुशीलता, नम्रता, और अदब का व्यौहार न होगा, ऊंचे दरजे के लोग नीचे दरजे के लोगों के साथ कड़ाई और बेअदबी का बर्ताव करेंगे तो परस्पर का ऐक्य सम्बन्ध ढीला पड़ जावेगा। और इस प्रकार वह रिश्ता जो एक सैनिक का अपने महाराजा के साथ है, हिल जावेगा। और महाराजा की इच्छा में जो वास्तविक जाति भर की इच्छा है, आघात पहुंचेगा।

सारांश यह कि सेना में सद्भाव और परस्पर प्रेम में किसी प्रकार का वैपरीत्य करने वाले न केवल सैनिक दृष्टि से वरन सम्पूर्ण देश और जाति के सन्मुख पाप के भागी होंगे।

(३) सिपाही का गुण बहादुरी और हिम्मत है। ये दोनों गुण जपान देश के सनातन भूषण हैं। और निःसन्देह जातीयता का निर्माण तो इन गुणों के बिना हो ही नहीं सकता। सिपाही का व्यवसाय ही शत्रु से लड़ने का है। तो उसको बहादुरी का ध्यान क्षण भर के लिये भी भूलना नहीं चाहिये। पर याद रहे कि बहादुरी के भी दो भेद हैं। सच्ची बहादुरी और भुलावे की बहादुरी। जवानी का जोश और उसके आवेश में किसी काम को सहसा कर गुज़रना सच्ची बहादुरी नहीं है।

हथियारबन्द सिपाही को आवेश में आकर कोई काम सहसा कर डालना कदापि उचित नहीं है। उसका हर एक काम कारण और परिणाम को विचार कर होना चाहिये।

सिपाही के किये हुए काम का अंजाम सब के लिये लाभ दायक ही होना चाहिये। उसकी तनिक सी बेपरवाही का बहुत हानि कारक अंजाम हो सकता है।

तुम को शत्रु के अत्यन्त छोटे दल को भी तुच्छ नहीं समझना चाहिये। क्योंकि ठीक तुम्हारे ही तरह का उद्देश्य वह भी रखता है। उसका काम भी उतने ही गौरव का है जितना तुम्हारा। उसी तरह शत्रु की बड़ी सेना के सन्मुख भयभीत कदापि न हो क्योंकि वे भी तुम्हारी ही तरह के मनुष्य हैं। कोई भी विशेषता तुम से अधिक किसी में हो ही नहीं सकती। सारांश यह कि निर्भय चित्त से तत्परता पूर्वक उद्देश्य सिद्ध करना सच्ची बहादुरी है। जो लोग बहादुरी के इस सच्चे अर्थ को समझ लेंगे वे सदा दूसरों के साथ सादगी और सहानुभूति का व्यौहार करेंगे और ऐसा करने से शत्रु, मित्र, सभी के श्रद्धा भाजन बनते हुये जातीय उद्देश्य सिद्ध कर सकेंगे।

यदि जोश में आकर किसी के साथ कभी कोई काम सख्ती और बे रहमी से करोगे तो लोग तुम से वैसी ही घृणा करेंगे जैसी कि चीते और भेड़िये से करते हैं।

(४) सिपाही को ईमानदार और धर्मात्मा होना चाहिये। ईमानदारी और धार्मिकता मनुष्य मात्र का उचित कर्तव्य है। फिर हथियार बन्द मनुष्य के लिये इन गुणों की कितनी बड़ी ज़रूरत है सो तुम अच्छी तरह समझ सकते हो। सिपाही के लिये और संसार भर के वास्ते भी इन दोनों शब्दों का अर्थ एक सा है "ईमानदारी" का अर्थ "बात का धनी होना" कौल फेल का सच्चा होना है और "धार्मिकता" कर्तव्य पालन का नाम है। सो यदि तुम चाहते हो कि सच्चे सिपाही के ये दोनों गुण तुम में आवैं तो तुम को किसी काम के करने या न करने के पहिले उस पर गंभीर विचार करना चाहिये।

यदि तुम किसी ऐसे काम के करने का बचन देते हो जिसकी अवस्था निश्चित रूप से तुम को ज्ञात नहीं है तो याद रक्खो तुम ईमानदारी की श्रेणी से जान बूझ कर पतित हो रहे हो। क्योंकि यदि किसी कारण से तुम अपने बचन को पूरा न कर सको जिसके पूरा करने का निश्चय तुम को पहिले ही से कार्य्य की अनिश्चित अवस्था के कारण नहीं है, तो उस अवस्था में तुम्हारा बचन टूट जावेगा। और तुम अपनी श्रेणी से गिर जाओगे। पीछे तुम्हारे हाथ में उस बदनामी से बचने का कोई उपाय न रह जावेगा और तुम को व्यर्थ पछताना पड़ेगा।

पहिले इसके कि तुम किसी काम के करने को तत्पर हो गम्भीरता पूर्वक विचार कर लो कि वह काम उचित है वा अनुचित, और तुम से हो सकता है अथवा असाध्य है इस कारण को विचार करने के बाद कर्तव्य कार्य्य में प्रवृत्त हो जावो। यदि तुम समझते हो कि जो बचन तुम देते हो अथवा जो काम तुमसे चाहा जाता है वह इतना बड़ा है कि तुम उसे पूरा न कर सकोगे। चाहे वह किसी कारण से क्यों न हो। तो तुम्हारी ईमानदारी और धार्मिकता यही है कि तुम उसका ज़िम्मा

मत उठाओ इतिहास प्रत्येक समय के बाबत ऐसी ही सांखी दे रहा है। बहुत बड़े बड़े लोगों और वीर गणों ने अपने बचन प्रतिपाल के कारण अपनी अनमोल जानों को गवां दिया। जिसके कारण उनके निज गौरव की रक्षा तो हुई परन्तु शोक ! कि संसार का कितना बड़ा नुक़सान, और न्याय की कैसी अवहेलना हुई ! सो तुमको इस बात से सबक सीखना चाहिये और ऐसी भूल में कभी न पड़ना चाहिये जिससे तुम्हारी निज जीवन हानि हो और जाति को जोख़िम में पड़ना पड़े।

(५) सादगी और मितव्ययशीलता (किफ़ायतसारी) भी सिपाही के लिये ज़रूरी आदतें हैं।

यदि तुम अपने चाल चलन में सादे और मित व्ययी न होगे तो निःसन्देह तुम निर्बल और कमज़ोर दिल के होगे। और तुम्हारी टेंव विलासी (अराम तलब) हो जावैगी। जिसका परिणाम "ईर्षाशीलता" है।

ईर्षा मनुष्य के चित्त में कमीना पन पैदा कर देती है जिसके होते हुए उसको कोई भी पसन्द नहीं कर सकता और न उसका व्यङ्ग किसी को गवारा होगा। इस दशा में न तो तुम्हारी वीरता और न वफ़ादारी तुमको पतित होने से उबार सकैगी।

मनुष्य में हीनता का यह बड़ा भारी व्रण है। और इसका विष ऐसा छूत है कि यह जहां किसी एक को भी छू गया कि सारी सेना में छूत रोग की भांति फैल जावैगा। तब दिली जोश या दृढ़ उत्साह (Esprit decorps) आदि के मज़बूत किले भी ठहर नहीं सकैंगे और न कोई निबन्ध प्रबध (discipline) ही काम आवैगा। हमने इस विषय को स्वयम् बहुत विचारा है। और विलास प्रियता के छूत की संक्रामकता को समझ कर ही सेना में इसके रोकने का बड़ा क़ानून बनाया है।

हमारा तुम्हारे साथ घनिष्ट सम्बन्ध ही हमको इस बात पर लाचार करता है कि हम तुमको बारम्बार इन बातों की याद दिलाते रहैं।

हमारी हार्दिक्य इच्छा है कि तुम इन बातों को सदा याद रक्खो।

हमारी यही पांच आज्ञायें हैं तुमको चाहिये कि इनको सदा ध्यान में रक्खो। परन्तु तुम्हें इन शिक्षाओं को अमल में लाने के वास्ते "सच्चे मन" की आवश्यकता होगी।

इन पांच आज्ञाओं को हथियारबन्द आदमी के "बीज मंत्र" समझना चाहिये और हम "सच्चे मन" के हों इन मन्त्रों की "शक्ति" है।

यदि मन सच्चा न हो तो ये मन्त्र और यह उपदेश केवल दिखाने के गहने हैं। और सच्चे मन से इनकी आराधना की जावे तो लक्ष्य बेध की इनमें अलौकिक शक्ति मौजूद है।

ये शिक्षायें निःसन्देह मनुष्य जीवन के साधारण राह की बातें हैं। इन पर अमल करना और अपने अपने जीवन को इनके अनुकूल बनाना कोई कठिन काम नहीं है।

सो यदि तुम इन आज्ञाओं को ध्यान में रख कर अपने देश की सेवा में तत्पर होगे तो न केवल अपने देश और अपनी जाति को ही सुखी करोगे वरन हमारे हार्दिक्य हर्ष और सन्तोष का कारण बनोगे।

पाठक गण! महाराजाधिराज मिकाडो मत्सहितू की अपनी सेना के प्रति यही पांच आज्ञायें हैं।

ये राज वचन कैसे मर्मस्पर्शी और हृदय ग्राही हैं! निःसन्देह इन मन्त्रों ने जापानी सेना के हृदय में स्थान पाया। उन लोगोंने "सच्चे मन" की आराधना से इन मंत्रों में शक्ति उत्पन्न करदी। उसी शक्ति के बल से आज उनके सभी कामों में कृत कार्य्यता और सभी ओर उनके यश का सौरभ फैल रहा है।

सचमुच ही जापानी सिपाही के प्रत्येक कामों में उसकी दिनचर्य्या की प्रत्येक घटिका में इन मंत्रों का चमत्कार चमक रहा है।

यूरोपियन शक्तियों की दृष्टि में जापानियों की यह चमत्कारिता आकस्मिक है और यह चिरस्थायिनी न होगी।

परन्तु हम विश्वास पूर्वक कहते हैं कि जब तक जापानियों की निष्ठा और अमल इन शिक्षाओं पर रहैगा । संसार की कोई भी शक्ति उनको नीचा नहीं दिखा सकती ।

हमने जापानियों को स्वयम् "चीन की लड़ाई" में देखा था । देखा ही नहीं बल्कि उनके साथ ही साथ बहुत अवसरों पर काम किया था । हमने जापानी सिपाहियों में और उनके अफसरों में, वफ़ादारी और देशानुराग, नम्रता और आज्ञाकारिता, बहादुरी और हिम्मतवरी, ईमानदारी और धार्मिकता, तथा सादगी और मितव्ययिता पूर्णरूप से विराजमान पाया था । ऐसा देख कर ही हमारे मन पर उनके चाल चलन का अच्छा असर हुआ था और हमने अपनी "चीन में तेरह मास" नामक पुस्तक में उनकी समुचित प्रसंशा की थी जिसके विषय में हमारी प्रान्तिक सरकार ने अपनी Administration Report of U. P. 1902-03 में लिखा था ।......................

The au'her at Considerable length, sings the praises of the Japanese, whose valour and military efficiency, he says, strongly impressed the Indian soldiers.

हमने अपने सरकार की इस आलोचना को किञ्चित् कटाक्ष भी समझा था परन्तु हमारे प्रशंसा के गान आज बिलकुल सच्चे उतर रहे हैं।

हमारे विश्वास का कारण भी है वह कारण यही कि महाराजा मिकाडो की ये शिक्षायें हमारे लिए कुछ नई नहीं हैं। हमारा यही तो "आर्य्यधर्म" है । यही तो हमारे समृद्धि समय की दिनचर्य्या थी । हमारे समृद्धि समय के अन्तिम काल का एक मात्र बचा हुआ इतिहास व्यासदेव कृत "महाभारत" हमारी जातीय चर्य्या के सैकड़ों आख्यान सुना रहा है । जिनमें जातीय जीवन का निर्माण, संगठन, और परिचालन के ये ही उपाय और साधन वर्णन किये गये हैं । इन मन्त्रों के साधन करने वाले सत्पुरुषों के महत्व उदाहरण स्वरूप दिखलाये गये हैं । फिर इन्हों के विपरीत चलने वालों की पतन कथायें भी वहां मौजूद हैं । हम, अतएव, अपने पाठकों से सविनय अनुरोध करते हैं कि अपने

जातीय इतिहास की कृपा करके एक बार पर्य्यालोचना कर जावें और देखें कि वहां क्या क्या अनमोल रत्न भरे पड़े हैं।

सो हमारे लिए ये आज्ञायें स्वयम् अनुभव की हुई हैं। हमारे तो ये अनुभव सिद्ध मन्त्र हैं।

हम क्यों न पूरे विश्वास के साथ कहें कि चाहे कोई भी जाति क्यों न हो जो इन शिक्षाओं के अनुकूल आचार व्यौहार करेगी उसका नीचा दिखाने वाला संसार में कोई हो ही नहीं सकता।

लोग कह सकते हैं कि जब कि ये तुम्हारे अनुभूत मंत्र थे तो तुम्हारे अपने ही देश का अधःपतन क्यों हुआ।

महाशय! सवाल सच्चा है। पर जवाब की अपेक्षा नहीं रखता जवाब क्या हो सकता है?

"सच्चा मन" ही इन मन्त्रों की शक्ति है।

शिक्षाओं को अमल में लाने के वास्ते "सच्चेमन" की आवश्यकता है।

बस उत्तर यही हो सकता है कि यहां "सच्चेमन" का अभाव हो गया था।

इन शिक्षाओं के सनातन से मौजूद होते हुये "सच्चेमन" का अभाव कैसे हुआ?

सो महाराजा मिकाडो के ही बचनों में बहुत काल से शान्ति सुखका भोग करते करते हमारे देश की योग्यता का नाश सा हो गया था।

अथवा हम यों कहें कि "मानसिक उन्नति के ऊंचे सोपान पर चढ़ जाने के सबब हमारे शिरस्थानी लोग सांसारिक उन्नति की वासना को भूल से गये। और "सिर" के अभाव में "हाथों" ने निरंकुश अत्याचार करके जातीयता का सर्वनाश कर डाला। और वे महामन्त्र भी जापान के तत्कालीन प्रबंध की तरह "केवल काग़ज़ों ही पर" रह गये।

"सच्चे मन" का यों अभाव हो गया और वे शिक्षायें हम में से लुप्तप्राय हो गईं।

परन्तु मित्रगण! क्यों अब भी हमारे लिये वही "सिर का अभाव" और "हाथों की निरंकुशता" बनी हुई है?

नहीं? वह सभी बातें काल की अतल कन्दरा में विलीन हो गईं?

अब संसार रूपी उद्यान में प्रातःकाल के अरुणोदय समय की नवल बसन्ती सौरभ सनी सुन्दर मनोहर समीर प्राची दिशा से बहती हुई हमारे शरीरों को स्पर्श कर रही है।

आओ हम सब लोग भी, नवीन मन, नवीन प्राण, नवीन उत्साह और नवीन बल से नव्य भारत की जनम बधाई देवें।

चमन चमन में नसीमें सहर पुकार आई।
खिज़ां का कूच हुआ बुल बुले बहार आई॥

गदाधरसिंह।

प्रजा पीड़ा

हमारे ग्रन्थकारों ने प्रजा पीड़ा दो प्रकार की लिखी है दैवी और मानुषी। प्लेग दुर्भिक्ष, चेचक, कलेरा, आदि का फैलना दैवी विपत्ति या पीड़ा कहाती है। ये पीड़ायें दैवी कोप के कारण फैलती हैं और दैवका कोप तभी होता है जब लोगों की प्रवृत्ति कुत्सित कामों की ओर हो जाती है। पर यह पीड़ा चिरस्थायिनी नहीं रहती बरसाती नदी के समान उमड़ी और जो कोई अपने किसी अदृष्ट अपराध के कारण उस झोंक में आ गया उसे सकेल थोड़े दिन में आपही आप शान्त हो जाती है। प्रकृति के नियम और ईश्वरीय नियोग के अनुसार जब प्रकृति के नियमों की विकृति मिट गई तब वह पीड़ा स्वयं शान्त हो जाती है। दूसरी मानुषी पीड़ा है। चोर डांकू या शासनकर्ता की कड़ाई जो पुलिस या टैक्स इत्यादि से पैदा होती है। प्रचलित क्रम तो यह है कि राजा प्रजा का पालन करता है और प्रजा राजा का वैभव और धन संपत्ति बढ़ाती है।

"प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्द्धयति पार्थिवम्"

जहां प्रजा में बल है बल्कि प्रजा का समूह इस योग्य है कि अपना शासन अपने आप करले वहां उन पर हुकूमत करने वाला कोई हाकिम या राजा के होने की कोई ज़रूरत ही नहीं है और न वहां शासन के कारण प्रजा में किसी तरह की पीड़ा की कभी शंका होती है। वह देश दिन २ तरक्की करता जाता है और वहां की धन संपत्ति का भला क्या ठिकाना कि किस ओर छोर तक पहुंच सक्ती है। अमेरिका वाले इस समय जो उन्नति की सीमा को पहुंचे हुए हैं उसका यही कारण है कि वहां प्रजा प्रभुत्व है प्रजा में पीड़ा किसे कहते हैं इसका कदाचित् उन्होंने नाम भी न सुना होगा। स्वतंत्रता देवी के परमोपासक ऐसों के लिये "सर्वाः सुखमया दिशः" उनका अध्यवसाय, उद्यम, साहस, वाणिज्य कलाकौशल, रणकौशल, सत्य पर नेह, विद्या में अनुराग, स्वदेश वात्सल्य आदि समस्त सद्गुण सराहने योग्य हैं। नरतन में देवयोनि ऐसे ही को कहना चाहिए। देवयोनि संबन्धी पुराणों के अनेक आख्यान और आख्यायिकाएं बतला रहे हैं कि इस पुराने जीर्ण भारत में भी एक समय ऐसा ही था। कितनी बातों में तो अमेरिका से यह अधिक चढ़ा बढ़ा था। हमारी यह वर्ण व्यवस्था उसी समय की चलाई हुई है सब लोग अपना कुल परंपरा गत काम करते हुये देश की श्री वृद्धि के सहायक थे। एक दूसरा क्रम शासन का प्रजा पीड़ा रोकने के लिये राजा और प्रजा में ऐकमत्य का होना है और वह तब दृढ़ता के साथ कायम रह सक्ता है जब राजा के वर्ग वाले और प्रजा के अगुआ लोग हर तरह पर ताकत में बराबर हैं। प्रजा के अगुआ राजकीय दल से किसी बात में किसी तरह हेठे नहीं हैं। राजकीय वर्ग वाले यदि अनीति के बर्ताव से प्रजा में असन्तोष पैदा किया चाहैं तो ये प्रजा के अगुआ लोग उन्हें भर पूर शठं प्रति शाठ्यं करने को तैय्यार रहते हैं और यह बात यूरोप के कई एक भाग्यवान् देशों में पाई जाती है जहां प्रजा में पीड़ा का लेशमात्र भी नहीं देखा जाता। विचार उन हत भाग्य देशों का किया जाता है जहां की प्रजा सब तरह बेमुंह की अन्धी, गूंगी, बहिरी और